चंड-प्रतिज्ञा

(एक मौलिक नाटक)

लेखक—

सन्तगोकुलचन्द्र शास्त्री, बी. ए.

मुख्य संस्कृताध्यापक—डी. ए. वी. हाई स्कूल, लाहौर

१९४१

द्वितीय संस्करण— मूल्य १-)

प्रकाशक—

सन्त गोकुलचन्द्र शास्त्री,

लाहौर

मुद्रक—

श्रीकृष्ण दीक्षित,

बाम्बे मैशीन प्रेस,

मोहनलाल रोड,

लाहौर।

नाटक के पात्र

महाराणा लाखासिंह	मेवाड़का अधिपति
चंड	महाराणा लाखासिंहका बड़ा पुत्र
रघुदेव	,, ,, छोटा पुत्र
मुकुल	चंडका वैमात्रेय भाई
श्यामल्ल	मारवाड़का राजा
जोधसिंह	श्यामल्लका पुत्र
रामसिंह	चंडका अन्तरंगमित्र
पुरोहित	लाखासिंहका कुल-पुरोहित
प्रधान	प्रधान मन्त्री
चन्दनसिंह देवसिंह भवानीसिंह विश्वनाथ जगत सिंह	मेवाड़-निवासी
अमरसिंह	श्यामल्लका गुप्तचर
हंसा	लाखासिंहकी राणी
वसुमती प्रभा	हंसाकी सहचरियां
भिखारिन	रामसिंहकी विमाता
पन्ना	हंसाकी दासी
चपला	,, ,,

दो बातें

भारतीय इतिहासमें मेवाड़की वीरता और त्यागकी गाथाओंको एक अनुपम तथा आदरणीय स्थान प्राप्त है। यदि ध्यानसे देखा जाय तो कोई भी एक जाति या जनसमूह राजपूती वीरता और त्यागके उच्चादर्श तक अब तक नहीं पहुँच पाया। बाहरके देशोंमें निस्सन्देह ऐसे ऐसे वीर हुए हैं जिनके विलक्षण कार्योंको सुनते ही उनकी प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जाता। परन्तु उनके कार्य वैयक्तिक होने से उनके अपने जीवन तक ही सीमित थे। किन्तु राजपूतोंमें यह बात नहीं है. जिस दिन से इन्होंने विदेशियोंसे लोहा लेना शुरू किया है उसी दिनसे इन्हें न खाने-पीने का और न उठने-बैठने का चैन रहा है। एक हाथ इनका घोड़े की पीठ पर रहता और दूसरा भोजनपात्रमें। सोते समय भी इनकी पीठसे तूणीर और हाथ से तलवार अलग न होने पाती थी। देशकी रक्षा और प्रण-पालनके लिए ये समग्र जीवनभर देश-माताकी सुखमय गोद को छोड़कर विपत्तियों की गोद में खेलते रहे हैं, और उस पर भी आश्चर्य यह कि उनके मुखसे कभी आह तक नहीं निकली है।

वीरता इनका मानों व्यवसाय हो चुका था। इनके कुलमें तलवार कभी म्यानमें न रहने पाती थी। पिताके बाद पुत्र उसको बपौती मान कर उठाना अपना कर्तव्य ही नहीं बल्कि सौभाग्य मानता था। उसी तलवार का यह प्रभाव है कि इस अध:पतनके समयमें भी 'राजपूत' नामके आगे भारतीयों की गरदनें स्वयं ही सादर झुक जाती हैं। अब भी मेवाड़ के खंडहरोंसे तलवारोंकी झनकार सुनाई देती है; उनकी प्रत्येक रक्तरञ्जित ईंट अपना इतिहास मूक

भाषा में स्वयं बता रही है, अब भी जौहरकी प्रचण्ड ज्वालाए हिन्दू-नारियोंके उद्दिष्ट पथको प्रकाशित कर रही हैं।

यह सत्य है कि यह युग न उस वैयक्तिक वीरताका है और न सामूहिक वीरताका। इनका स्थान अब विज्ञानने ले लिया है। सैकड़ों कोसों की दूरी पर बैठे निरपराध और निस्सहाय प्राणी सैकड़ों और हज़ारोंकी संख्यामें, आकाशसे गिरे हुए एक ही गोलेसे अकालमें ही कालके ग्रास हो जाते हैं! वहांपर वैयक्तिक वीरता क्या करेगी! फिर भी आदर्श आदर्श ही है। उसे कभी भी अपनी आँखोंसे ओझल न होने देना चाहिए।

हमारे देश की आजकल जो दुर्दशा हो रही है उसे सुधारनेके लिए न कामिनियोंके कलनाद की आवश्यकता है और न नूपुरोंके निनादकी, आवश्यकता है केवल चमचमाती तलवारोंकी झनकार की; लबालब भरे हुए प्यालोंकी रक्तमदिराके उन्माद की नहीं, वरन स्वतंत्रता की वेदीपर बलिदान होने को यौवनोन्माद की आवश्यकता है; विरहकी तड़पनसे संतप्त हृदयोंसे निकलते हुए उष्ण उच्छ्वासोंकी नहीं आवश्यकता, बल्कि अपनी दुर्गति को देखकर जलते हुए प्राणोंके उष्ण उच्छ्वासोंकी आवश्यकता है। यह समय कामिनीकी उपासनाका नहीं, शक्तिकी उपासना का है; स्वार्थपरताका नहीं, त्यागका है।

इसी कारण राजपूतोंकी वीरता, त्याग और देशसेवा की बातें जिस किसी रूपमें—नाटकके दृश्यों द्वारा, निबन्धों के रूपमें अथवा कविताके आकारमें—जनसाधारण के सम्मुख जितनी अधिक संख्यामें रक्खी जायँ, उतनी कम हैं।

मेवाड़भूमि मनुष्यरत्नों की खान रही है। भारत-माताके भालके मुकुटको बाप्पारावल वीर हम्मीर, राणा कुंभा, शूर जयमल,

वीर सांगा और प्रणवीर प्रताप जैसे वीररत्नों ने जैसे सुशोभित किया है, वैसे ही कुमार भीमसिंह और चंडके आत्मत्यागसे उसका मुख कम उज्ज्वल नहीं हुआ है।

प्रस्तुत नाटक 'चंड-प्रतिज्ञा'के इन दृश्योंमें यथासंभव चंडके स्वार्थत्यागके आदर्श को पाठकोंके सामने रखनेका उद्योग किया गया है।

चंडके जीवनकी प्रत्येक घटना पितामह भीष्मके जीवनसे मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि पितामहने ही हज़ारों वर्षोंके बाद अपने जीवनकी विस्मृतप्राय त्यागकथाको हमें पुनः स्मरण करानेके लिए चंडका रूप धारण किया है।

पिताके विवाहके लिए वही आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत, विमाताके पुत्रका वैसा ही लालन-पालन और राज्यप्रदान आदि ऐसी घटनायें हैं जो बिल्कुल दोनों जीवनोंमें एकसी हैं। हमें तो चंडका जीवन कई अंशोंमें भीष्मजीके जीवनसे भी उन्नतर जान पड़ता है।

भीष्मजीके त्यागका कारण उनके पिता की कामवासना थी, परन्तु चंडके त्यागका कारण ऐसा था जिसकी तुलना किसी अन्यसे नहीं होती है। पिताके केवल उपहासरूपमें ही एक कुमारीको पत्नी कहनेपर, चंडने उनके वाक्यको पत्थरपर की लकीर मान लिया और दम तब ही लिया जब उसे माता बना लिया। उनके बाद वैमात्रेय भाई को ही राज्याधिकारी बनानेके निमित्त आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत धारण किया।

दूसरे, भीष्मजी राज्यके स्वामी न होनेपर भी वास्तवमें आजीवन उसके कर्ता-धर्ता बने रहे, परन्तु चंडको देशसे निर्वासित होकर देश-विदेशकी राख छाननी पड़ी। फिर, जब मेवाड़को शत्रुसे पददलित होते देखा तो उसी विमाताके बुलानेपर, जिसने

निर्वासन दिया था, वैमात्रेय भाईका साथ दिया और जन्मभूमि को स्वतन्त्र किया। अन्तमें अपने हाथोंसे विमाताके पुत्रको सिंहासनपर बैठा कर स्वेच्छासे मातृभूमिको त्याग दिया। यह है त्याग की पराकाष्ठा !

चंड वीर भी कुछ कम न था। पर उसे अपनी वीरता प्रकट करनेका कोई अवसर ही नहीं मिला और जो थोड़ा सा मिला भी उसमें उसे सफलता मिलते देर नहीं लगी।

इस नाटकके नायकके इसी त्यागसे प्रभावित होकर लेखकने इन दृश्योंको सहृदय पाठकोंके सामने रखनेका यत्न किया है। उसे इसमें कितनी सफलता हुई है यह उन्हींके निर्णय पर निर्भर है। मैं श्रीयुत बा० महेशचन्द्र एम० ए० (हिन्दी) का अतीव कृतज्ञ हूं। उन्होंने इसके अन्तिम प्रूफ़ों के संशोधनमें मुझे बहुत सहायता दी है।

३०—५—१९४१ लेखक—

प्रथम अंक

पहला दृश्य

(स्थान—मारवाड़के प्रसिद्ध नगर मंडोरके राजभवनसे सटा हुआ एक मन्दिर। उसमें राधाकृष्णकी युगलमूर्ति विराजमान है। मन्दिरके सामने एक सुन्दर वाटिका है, जिसमें तरह तरहके फूल खिले हैं। मन्दिरका प्रवेशद्वार बन्द है। इसके अतिरिक्त तीन और द्वार हैं जिसमें से दोनों बगलोंके दोनों बन्द हैं, केवल मूर्तिके पीछेवाला खुला है। मूर्तिके सामने एक षोडश-वर्षीया बाला ध्याननिमग्न बैठी है। उसके पास पूजाकी सामग्री और एक डलियामें रङ्ग-रङ्गके फूल और उनकी गुथी हुई एक माला रखी है।)

कन्या—(हाथ जोड़े हुए) घनश्याम, मैं बचपनसे ही तुम्हारी सेवा निष्काम भावना से करती आई हूं। इन पन्द्रह-सोलह वर्षोंमें मैंने तुमसे कुछ नहीं मांगा—मांगती ही क्या, मुझे किसी वस्तुकी आवश्यकता ही नहीं रही। पर अब मुझे तुम्हारे वरदानकी आवश्यकता है, इसलिए तुम्हारी शरणमें आई हूं।

(गाती है)

अब तो कृपा करो यदुनाथ,
शरणहीन तव शरण पड़ी हूं,

रखकर चरणाम्बुजपर माथ।

अब तो कृपा करो यदुनाथ॥

अबला मैं तुम हो बल-आकर,

चरणसेविका मैं तुम ठाकुर,

निराधार मैं तुम अवलम्बन,

नाथहीन मैं तुम हो नाथ।

अब तो कृपा करो यदुनाथ॥

कृष्णाके थे चीर बढ़ाये,

भीलनके जूठे फल खाये,

विप्र अजामिल, गणिका पापिन,

पार किया इनको दे हाथ।

अब तो कृपा करो यदुनाथ॥

(उद्यानमें उसी उम्रकी दो और बालायें आती हैं। वेष-भूषासे उनका सम्बन्ध किसी उच्च कुलसे प्रतीत होता है। वे बातें करतीं करतीं मन्दिरके पास आ जाती हैं।)

एक कन्या—वसु, महलका कोना-कोना और इस उद्यानका पत्ता-पत्ता छान डाला है, किन्तु कुमारीका पता अब तक नहीं लगा।

वसुमती—प्रभा, मुझे तो बात कुछ विचित्र सी मालूम होती है। आज तक कुमारी हमसे कभी अलग नहीं रहीं, छायाकी तरह सदा हमारे साथ ही रहती रही हैं।

प्रभा—यही तो आकुलता का कारण है।

(गाने की आवाज़ आती है। वसुमती कान लगा कर उसे सुनती है।)

वसुमती—यह संगीत की ध्वनि कहां से आ रही है ?

प्रभा—(कान लगा कर) ध्वनि तो बिल्कुल स्पष्ट है और पाससे ही आ रही मालूम होती है।

वसुमती (सहसा चौंककर) क्या पहचाना नहीं ?

प्रभा—नहीं।

वसुमती—क्या कुमारी हंसा की आवाज़को भी नहीं पहचानतीं ?

प्रभा—(ध्यानसे सुनकर) हाँ, स्वरकी मधुरता तो उसीकी है। चलो देखें तो, वह क्या कर रही है ?

वसुमती—इस तरह नहीं। मूर्तिके पीछेके द्वारसे मन्दिरमें इस तरह प्रवेश करें कि वह हमें देख न सके।

प्रभा—यही ठीक होगा।

(दोनों मन्दिरके पीछेके खुले द्वारसे अलक्षित ही मन्दिरमें घुसकर मूर्तियोंके पीछे छिपकर बैठ जाती हैं)

(हंसा गा रही है)

जिनपर दया-सुधा बरसाते,
अमर जगत् में वे हो जाते,
तारा नहीं प्रभो है किसको ?
किस का दिया नहीं है साथ ?
अब तो कृपा करो यदुनाथ।
पाप-पुंज-अवलिप्त पतित मैं,
पतितोंके उद्धारक आप,

मैं भिखारिणी द्वार खड़ी हूं,
नाथ पसारे दोनों हाथ।
अब तो कृपा करो यदुनाथ॥

(गाना समाप्त कर) स्तुतिका आनन्द जैसा आज आया है ऐसा पहले कभी न आया था।

एक आवाज़—(मूर्तिसे) पुत्रि, तेरी प्रार्थनासे जितनी प्रसन्नता मुझे आज हुई है, इतनी पहले कभी न हुई थी।

हंसा—(गद्गद् होकर) घनश्याम, तुम्हारी इस असीम कृपाने मुझे कृतार्थ कर दिया है। ऐसा कह कर तुम इस क्षुद्र बालिकाको प्रोत्साहित कर रहे हो, नहीं तो, मेरे शब्दोंमें ऐसी शक्ति कहाँ कि वे तुम्हें रिझा सकें।

फिर वही आवाज़—हृदय को आकर्षित करने वाले शब्द नहीं होते, हृदय होता है। कहो क्या चाहती हो?

हंसा—क्या कहूं, लज्जा आती है! ऐसी निर्लज्जता की बात क्योंकर कह सकूंगी? तुम अन्तर्यामी हो, घटघटकी बात जानते हो, क्या मेरे मनकी वासनाको नहीं जानते?

फिर वही आवाज़—जानता क्यों नहीं, सब कुछ जानता हूं, पर उसे तेरे मुखसे भी सुनना चाहता हूं। क्या किसी देवताने बिना मांगे भी वरदान दिया है?

हंसा—कहते लज्......

फिर वही आवाज़—लज्जा कैसी बेटी! बेखटके सब कुछ कह डालो, मन्दिर की इन निर्जन दीवारों के अन्दर मेरे और तेरे सिवा और है ही कौन!

हंसा—कहती हूं ब्रजराज। (कुछ रुककर) अभी कहती हूं, अपने इष्टदेव के सामने दिलके भाव प्रकट न करूं, तो और किसके आगे करूँ ? मन्दिरका प्रवेशद्वार तो बन्द ही है, इस पिछले द्वारको भी क्यों न बन्द कर दूं ? (उठने लगती है)

वही आवाज़—(ज़रा क्रोधसे) क्या तुझे हमारी शक्ति पर भी सन्देह है ?

हंस—नहीं घनश्याम, यह कैसे हो सकता है ? तुम्हारी शक्ति पर सन्देह करना, संसार के प्रत्येक पदार्थ, बल्कि समूचे संसार के अस्तित्वपर ही सन्देह करना है ?

वही आवाज़—तो फिर यह द्वारका बन्द करना किस लिए ?

हंसा—(कांपती हुई, हाथ जोड़कर) क्षमा करो, मुझसे भूल होगई है, भयङ्कर भूल हो गई है, मैंने किसी सन्दिग्ध भाव से यह नहीं कहा था, यह तो केवल लज्जावश......

वही आवाज़—इन लज्जा-वज्जा की बातों को छोड़ो बेटी। वास्तविक विषयपर आओ।

हंसा—मैं यही मांगती हूं, (कुछ रुककर) मैं यही मांगती हूं (फिर रुक जाती है) मैं यही वर मांगती हूं किसी ऐसे के पल्लेसे बाँधी (रुक जाती है)........

वही आवाज़—(ज़रा हँसकर) वही बात हुई न —खोदा पहाड़ और निकली चुहिया ? यह भी कोई लज्जा की बात है ! जिस व्यक्तिके हाथमें जीवननैया की पतवार देकर इस भवसागरकी लम्बी और विषम यात्राको पार करना है, उसको अपने अनुकूल प्राप्त करनेकी इच्छा सदिच्छा है, स्वाभाविक है।

भला इस बातमें क्या लज्जा ? यह बात तो तुम अपनी माताको निःसंकोच कह सकती थीं।

हंसा—भारत की आर्य-रमणियां अपनी माताओं के सामने ऐसी निर्लज्जताकी बातें कैसे कह सकती हैं !

वही आवाज़—प्रभा और वसुमती तो तेरी अभिन्नहृदय सहचरियां हैं उनसे क्यों नहीं कह दिया ?

हंसा—अवश्य वे मेरी अभिन्नहृदय सखियां हैं पर,...वे बहुत नट-खट हैं ! मेरी हर एक बात की दिल्लगी उड़ाती रहती हैं--सम्भव है कि दिल्लगीमें ही वे यह बात भी माँ जी से......

वही आवाज़--कह देतीं तो क्या होता ?

हंसा--क्या न होता ! मेरे लिए बहुत कुछ होता । मैं लज्जाके मारे भूमिमें गढ़ जाती, किसीको मुंह दिखानेके भी योग्य न रहती।

वही आवाज़--(ज़रा हँसकर) अच्छा, छोड़ो इन बातों को । क्या तू चाहती है अपने समान रूपवान......

हंसा—(बीचमें ही काटकर) आवश्यक नहीं—रूप मनुष्यता की कसौटी नहीं है ।

वही आवाज़—रूपवान न सही, पर सर्वगुणसम्पन्न......

हंसा—यदि ऐसा हो जाय तो सोने पर सोहागा हो । पर केवल गुण-वानों और विद्वत्ता से बाल की खाल उतारने वालोंका भी यह युग नहीं है ।

वही आवाज़--तो तू फिर कैसा वर चाहती है ?

हंसा--सच्चा राजपूत, रूपवान न भी हो, पर वीर हो--सच्चा वीर हो, जिसके शरीर में दिल—सच्चा दिल हो और दिल में दर्द हो--देश के लिए दर्द हो । जो देशरक्षाकी वेदी पर हँसता हँसता आत्मबलिदान कर सके और जिसके

साथ मैं भी सतीत्व की चिता पर सोत्कण्ठ आरोहण करनेका सौभाग्य प्राप्त कर सकूं।

वही आवाज़—धन्य हो बेटी, तेरी यह सदिच्छा पूर्ण हो कर ही रहेगी। तुझ जैसी वीर राजपूतनियों से ही तो हमारा (हंसा विस्मय प्रकट करती है) नहीं, नहीं मारवाड़ का मुख उज्ज्वल हो रहा है।

एक और आवाज़—जैसा वर तू चाहती है वैसा वर मिला ही समझो।

हंसा—(विस्मयसे) यह आवाज़ पहली आवाज़ से बिल्कुल भिन्न हैं। देखूं तो समस्या क्या है?

(उठती है)

(वसुमती और प्रभा भाग कर द्वारके मार्गसे मन्दिरके बाहर चली जाती हैं, हंसा उनके पीछे भागी जाती है।)

(परदा गिरता है)

दूसरा दृश्य

(स्थान—मारवाड़, महल का एक कमरा, वसुमती, प्रभा और हंसा बातें करती करती आती हैं।)

हंसा—(कुछ कृत्रिम क्रोधसे) तुमने अच्छा नहीं किया। देवता के साथ उपहास किया है।

वसुमती—उपहास क्या किया है? जो वरदान उन्हें देना था हमने भी तो वही दिया है।

हंसा—वरदान कैसा?

प्रभा—बड़ी भोली है । दुधमुँही बच्ची है ! वीर राजपूत किसको चाहिये ?

वसुमती—प्रभा, छोड़ो इस माथेपच्ची को । हम तो हुई नटखट, राजमाताके कान भरने वाली ! हमसे हंसा अपने दिलकी बात काहे को कहेगी ! (रूठ जाती है ।)

हंसा—(प्यारसे) क्या तुम नाराज हो गई वसु ?

वसुमती—नाराज़ होनेकी तो बात ही है ।

प्रभा—छोड़ो वसु, क्रोधको. हंसा रूठ जायगी ।

हंसा—तुम लोग यहां आई क्यों ?

वसुमती—क्या हमारा यहां आना भी बन्द है ? लो भई, आगेको न आयेंगी । और आज्ञा ?

हंसा—वसु, आज मामला क्या है ? मेरी सीधी बात भी उलटी समझी जा रही है ।

प्रभा—(हंसकर) कुमारीको असली बात क्यों नहीं बताती वसु ?

वसुमती—तब बताऊंगी जब मुँह मीठा करायेंगी, (प्यारसे हंसाकी ठोड़ी पकड़ कर) मीठा !

हंसा—(हंसी से) मुँह मीठा करने के लिये पास ही बग़ीचेमें किस चीज़की कमी है ! घास है, पत्ते हैं, लतायें हैं और उनके साथ सुन्दर फूल हैं ।

वसुमती—वृक्ष हैं, उनके साथ मधुर फल हैं, कदलीवृक्ष हैं, उनके साथ केलेके गुच्छे हैं, सुन्दर लतायें हैं और उनके साथ द्राक्षा हैं ।

हंसा—ये फल तब खाने दूंगी जब सच्ची सच्ची बात बताओगी ।

प्रभा—अब बता दो वसु, राजकुमारीको अधिक परेशान न करो ।

वसुमती—अच्छा सुनो कुमारी, हम लोग देवी जी से वही वर लेकर आरही थीं, जो तुम देवता से माँग रही थीं।

हंसा—मैं तुम्हारी पहेली अब भी नहीं समझी।

वसुमती – क्योंकर समझोगी! बड़ी लज्जावती (मुंह लटकाकर व्यंग्य-से) जो ठहरी! अरी पगली, जिस वीर राजपूतको तू घनश्यामसे मांग रही थी उसीकी प्राप्तिका प्रबन्ध महाराणी जी ने स्वयं कर दिया है। वही सन्देश हम तुम्हें सुनाने को आ रही थीं। अब समझीं?

हंसा – वह कौनसा वीर राजपूत है वसु, जिसकी चरणसेविका बनने का मुझे सौभाग्य प्राप्त होगा?

प्रभा—जैसा तू चाहती है वैसा, सच्चा वीर, सच्चा राजपूत, लाखों में एक।

हंसा—(उत्सुकता से) ऐसी पेचीली पहेलियों से मेरे मन की उत्सुकताको न बढ़ाओ वसु।

वसुमती—(व्यंग्यसे) अधीर मत हो कुमारी! वह तुम्हारा सच्चा राजपूत है—मेवाड़ाधीश महाराणा लाखासिंह का सुपुत्र—चंड।

प्रभा—(हंस कर) नाम उसका चंड अवश्य है, पर—(हंसा की ठोढ़ीको अपने हाथसे उठाकर) इस कुमुदिनी का वह चन्द्र है।

हंसा—(गम्भीरतासे) तुम मेरे साथ उपहास कर रही हो। जङ्गलों के झाड़-झंखारों में रहने वाली मुझ जैसी खद्योतिकाकी पहुंच व्योमांगणविहारी भगवान् चन्द्र तक कैसे हो सकती है! मैं हूं खेतों में बहनेवाली एक साधारणसी कुल्या और वे हैं देवलोक से भूपर उतरी हुई गङ्गा की पवित्र धारा, कहां मैं और कहां वे! हमारा मेल—

प्रभा—हुआ समझो। महाराज ने विवाह का प्रस्ताव राणा लाखा-सिंह के पास पुरोहितजी के द्वारा भेज दिया है—पुरोहित जी नारियल भी ले गये हैं।

हंसा—क्या उन्होंने नारियल स्वीकार कर लिया है ?

वसुमती—किया समझो। क्या कोई राजपूत नारियलको भी लौटाया करता है ?

हंसा—फिर भी सन्देह मेरे चित्त को नहीं छोड़ता। मुँह तक पहुँचा हुआ भी दूध का वर्तन कभी कभी हाथसे छूट जाता है।

प्रभा—दुत् पगली ! ऐसे शुभ अवसर पर ऐसी बात भी क्या मुँह से निकाली जाती है !

हंसा—ईश्वर करे मेरा सन्देह मिथ्या हो।

(बातें करतीं करतीं जाती हैं)

(परदा उठता है)

तीसरा दृश्य

(स्थान—चित्तौड, महाराणा लाखासिंहका दरबार, महाराणा एक उच्चासन पर विराजमान हैं। आसनके ऊपर बहुमूल्य मणि-माणिक्योंसे सुशोभित, एक तिलई कामका रेशमी चन्दोवा टंगा है। सिंहासनके दोनों ओर दो राजसेवक श्वेत बालोंके बने सुवर्णचामर लिए खडे हैं। महाराणाकी दाईं ओर प्रधान मन्त्री ओर बाईं ओर एक सुसज्जित आसनपर कुलपुरोहित बैठे हैं। उनके साथही कुछ नीचे दूसरे मन्त्री यथाधिकार बैठे हैं। कई और दरबारी भी अपने अपने नियत स्थानों पर बैठे हैं।)

महाराणा—प्रधानजी, आपको स्मरण है न कि यही मास कुमार चंड का जन्ममास है ?

प्रधान—स्मरण क्यों नहीं अन्नदाता ! आप मासकी बात कहते हैं, मुझे तो उनका जन्मदिन भी खूब याद है। यही नहीं, वलिक कुमार के जन्मदिन से लेकर आज दिन तक उनके जीवन की प्रत्येक घटना मुझे अच्छी तरह याद है। आठ-दस साल जिसे गोद में उठाकर खिलाया हो, तत्पश्चात् जिसके साथ छाया की तरह रहकर उसके मंगलकी सदा कामना रही हो, उसके जन्ममास को क्या मैं भूल सकता हूं ?

महाराणा—मुझे विश्वास है प्रधानजी, कि कुमार बड़ा होकर अपनी कृतज्ञता का आपको पूरा परिचय देगा। मुझे उस पर गर्व है। सीसोदियावंश को वह और भी उज्ज्वल करेगा। हां, पुरोहितजी, आपसे भी कुछ कहना है।

पुरोहित—कहिये धर्मावतार !

महाराणा—कुमार के नये वर्षका ग्रहफल आपने देख लिया है ? यदि ग्रहोंमें से कोई ग्रह वक्र पड़ा हो तो उसका उपचार किया जाय।

पुरोहित—अन्नदाता, कुमारकी जन्मपत्रिका तो तैयार ही है, उसमें से ग्रहों की दशा देखकर उनका फलमात्र देखना शेष है।

महाराणा—उसे भी देख डालिये।

पुरोहित—कहें तो अभी देख आऊँ ? आधी घड़ी का काम है।

महाराणा—तो देखही आइये, यह संशय भी मिट जाय।

पुरोहित—जैसी महाराज की इच्छा। (जाता है)

प्रधान—अन्नदाता, एक बात कहूं, बुरा तो न मानियेगा ?

महाराणा—कहिये, बुरा क्यों मानूंगा ?

प्रधान--युवराज अब वालक नहीं रहे। यौवन में पदार्पण कर चुके हैं, इसलिए यदि अब उनका.........

महाराणा--(प्रधानकी वातको बीचमें ही काटकर और मुस्कराकर) प्रधानजी, मैं आपकी वातको समझ गया हूं। मुझे स्वयं कुमारके विवाह का ख्याल है। पर यदि अपने अनुरूप वंश और कुमारके अनुरूप कन्या मिले तभी यह सम्पन्न हो सकता है।

एक दरवारी--आपके इच्छा प्रकट करनेकी देर है सरकार ! सिसो- दियावंश के साथ अपना सम्बन्ध करने को कौन लालायित न होगा ?

(द्वारपाल आता है।)

द्वारपाल—(अभिवादन कर) महाराज, द्वारपर एक मारवाड़ी दूत और उसके साथ एक ब्राह्मण देवता खड़े हैं, प्रवेश की अनुज्ञा मांगते हैं।

महाराणा--आने दो। (प्रधानसे) मारवाड़से दूत किसलिए आया होगा ?

प्रधान—कोई विशेष वात तो है नहीं।

(द्वारपाल दूतको लेकर आता है, पुनः अभिवादन कर चला जाता है। महाराणा आसनसे उठकर ब्राह्मणको नमस्कार करते हैं और उसे कुलपुरोहितके आसन पर वैठा देते हैं)

महाराणा—(ब्राह्मणसे) कहिये देवता, आप सकुशल तो हैं ?

ब्राह्मण--जहांपर सिसोदियाकुलावतंस महाराणा लाखासिंहका और मारवाड़ाधिपति महाराणा रणमल्लका आधिपत्य हो वहां गौ-ब्राह्मणको कष्ट देनेका किसे साहस हो सकता है ?

प्रधान--तो आप मारवाड़से आ रहे हैं ?

ब्राह्मण—हाँ, अन्नदाता, मैं मारवाड़से ही आ रहा हूं। मैं मारवाड़ाधीश महाराज रणमल्लका कुलपुरोहित हूं, और ये जो दूसरे सज्जन मेरे साथ हैं ये उन्हींके प्रधान दूत हैं।

महाराणा—हम लोगोंका सौभाग्य जो आपके दर्शन हुए हैं। कहिये आपके महाराज तो सकुशल हैं ?

ब्राह्मण—आपकी सर्वथा कृपा है।

प्रधान—मेवाड़का मारवाड़से कुलक्रमागत सख्य है, इसे हम अपना गौरव मानते हैं।

ब्राह्मण—उसी चिरन्तन सख्यको हृत्पाशोंसे बांध कर दृढ़तर बनानेके लिये महाराजने मुझे आपके चरणोंमें यह नारियल (लाल रेशमी वस्त्रमें लपेटे हुए नारियलको एक चांदीके बक्ससे निकाल कर) भेजा है।

महाराणा—यह नारियल किसके लिये है देवता ?

ब्राह्मण—धर्मावतार, मारमाड़की राजकुमारी हंसाकुमारीका विवाह मेवाड़के युवराज कुमार चंडसे करनेको यह नारियल लाया हूं।

महाराणा—(मुस्कराकर) मैंने तो समझा था कि मेरे लिए है। पर कुमारके लिए ही होगा (अपनी डाढ़ीके सफेद बालोंको हाथमें लेकर) मेरे जैसे सफेद डाढ़ीवालेको अब कौन पूछेगा ?

(सब लोग हँसने लगते हैं)

ब्राह्मण—धर्मावतार, आपको किस वस्तुकी कमी है ! आपके इच्छा प्रकट करनेकी देरी है, फिर......

महाराणा—(हँस कर) फिर दस-बीस नारियल अभी पहुंच जाते हैं—यही न कहनेवाले थे ?

ब्राह्मण—हाँ, अन्नदाता ! अभी आपकी आयु ही क्या है ! पचास-पचपनकी आयु क्या किसी राजपूतके लिए अधिक है ?

महाराणा--अब तो यमराजका ही नारियल स्वीकार करेंगे देवता ! इच्छा तो यही है कि चंडको गृहस्थ-आश्रममें प्रविष्ट करा कर राज्यका भार उसके कन्धोंपर छोड़ूं और खुद भगवानका आश्रय लूं ।

ब्राह्मण--आपकी यह आकांक्षा अतिश्रेष्ठ है । आपके पुरखा यही करते आये हैं ।

महाराणा--आप लोगोंका आशीर्वाद होगा तो सब कुछ ठीक हो जायगा ।

ब्राह्मण--युवराज कहां हैं ? यदि यह शुभ कार्य शीघ्र हो जाय तो हम लौटने का प्रबन्ध करें ।

महाराणा--कुमार शायद आखेटको गया है, उसे बुलवानेको अभी दूत भेजता हूं । प्रधान जी, किसीको भेज कर चंड को बुलवा दो ।

प्रधान--जो आज्ञा (जाता है) ।

परदा गिरता है

चौथा दृश्य

(स्थान—चित्तौड़, समय—मध्याह्न-काल, एक जंगलकी सड़कपर पांच मनुष्य चलते चलते आते हैं । उनमेंसे दो आगे समकक्ष हैं, उनके पीछे दो और, और सबके पीछे एक अकेला । सब अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हैं । पहले दो वेषभूषासे राजकुमार मालूम

होते हैं और उनके पीछेके दो उनके अंगरक्षक, और अन्तिम एक वृद्ध सैनिक।)

दोनोंमें से बड़ा कुमार—चन्दनसिंह !

(सबके पीछेका सैनिक भागकर उसके पास आजाता है।)

चन्दनसिंह--आज्ञा युवराज चंड !

चंड--तुम तो कहते थे कि जंगलमें आजकल शिकार बहुत है ?

चन्दनसिंह—शिकार तो बहुत है युवराज। (ज़रा रुककर) कल तक असाधारण तौर पर बहुत था। कल ही मेरा बड़ा लड़का भवानी इसी जंगलसे तीन मृग, जिनमें एक बारहसिंगा था, मारकर लेगया था।

चंड—तो आज क्या बात है ? उसी जङ्गलसे तो हम अभी होकर आये हैं। अब वहाँ किसी जीवका चिह्न तक नहीं, सर्वत्र निस्तब्धता और जड़ता ही जड़ता है। कहीं आज हमें खाली-हाथ तो न लौटना पड़ेगा ? तब तो बहुत बुरा होगा। (साथके युवकको सम्बोधन कर) रघुदेव, तुम्हारा क्या विचार है ?

रघुदेव—भैया, आज तो कोई विचित्रसी बात मालूम होती है। कल सायंकाल जब मैं इसी जङ्गलमें भ्रमणके लिये आया था तो इस वनमें सर्वत्र सजीवता थी। शाखा-शाखापर पक्षीगण तरह तरहके श्रुतिमधुर कलरवसे मनको प्रसन्न कर रहे थे। वे एक जगह चैन ही न लेते थे--फुदकन और चंचलतासे समग्र उद्भिजसृष्टिमें जीवनका संचार कर रहे थे। इधर भूतलपर भी मृगोंके झुण्डके झुण्ड उछल कूद रहे थे। उन्हें देख देखकर मृतप्राय और

निरुत्साह प्राणियोंमें भी शैशवकी चञ्चलता आरही थी। पर न जाने आज कहाँ गया वह जीवन और वह चञ्चलता! उनके स्थानमें रह गई हैं सर्वत्र निर्जीवता और निस्तब्धता।

चंड--ये लक्षण किसी भावी विपत्तिके द्योतक तो नहीं हैं?

चन्दनसिंह--ऐसा विचार न करो युवराज। आखिर इन प्राणियोंमें भी कुछ न कुछ समझ है। आपकी आवाज़ और शस्त्रों की झनकारको सुनकर कहीं भाग गये होंगे। प्राण तो सबको प्यारे होते हैं।

चंड--इस दृश्यको देखकर मेरा मन न जाने क्यों व्याकुलसा हो रहा है। आज तक चंड मृगयासे कभी खाली नहीं लौटा।

चन्दनसिंह--कोई चिन्ता नहीं कुमार, फिर भी कोई न कोई भूला-भटका जानवर आही निकलेगा। अभी तो मध्याह्न ही है।

(पुरोहित शंकरदेवका प्रवेश, सभी लोग उन्हें झुककर प्रणाम करते हैं।)

चंड--पुरोहितजी, आज इधर कैसे पधारे? कहीं कोई यजमान...

शंकरदेव--यजमानोंके पास जाना तो हमारा धर्म ही है युवराज! यजमानोंने पुरोहितोंके पास जाना चाहे छोड़ दिया हो, पर पुरोहित अपना कर्तव्य क्योकर भूलेंगे!

रघुदेव--पुरोहितजी, आजका दिन हमारे लिए कैसा है?

पुरोहित--अरे! मैं तो भूलही गया था। जिस कामको आया था उसे बिल्कुल भूलही चला था। रघुकुमार, तुम्हारे प्रश्नने मुझे उसका स्मरण करा दिया है। आज ही प्रातः मैं दरबारमें गया था।

बातों बातोंमें महाराजसे पता लगा कि यही मास चंडका जन्ममास है। तब उन्होंने मुझे तुम्हारा वर्षफल निकालनेको कहा।

चंड—वर्षफल निकालनेके लिये मुझसे भी क्या कुछ पूछना है ?

पुरो०—पूछना नहीं, बताना है। तुम्हारे जन्मनक्षत्रोंके फलोंसे मुझे यह पता लगा है कि तुम दोनों भाइयोंमें से जो भी आज शिकारमें सफल होगा वही मेवाड़की गद्दीका उत्तराकारी होगा।

रघु—आप क्या कह रहे हैं पुरोहितजी, भैया तो उत्तराधिकारी हैं ही ?

चंड—मृत्युका क्या कोई निश्चित समय है रघु ! यदि अधिकार पानेसे पहलेही मैं संसारसे चल बसूं !

रघु०—(आँखोंमें आंसू भरकर) ऐसा न कहो भैया, ऐसी अपशकुनकी बातें कहकर मेरा मन न दुखाओ।

चंड–यदि कदाचित् आज शिकार ही न मिले तो !

पुरोहित—ऐसा हो नहीं सकता कुमार। तब मैं समझूंगा कि मेरी गणनामें कुछ भूल रह गई है, क्योंकि शास्त्रीय वचन कभी मिथ्या नहीं होते।

चंड—यह भी हो सकता है कि शिकार हम दोनोंके निशानों से निकल जाय।

पुरो०—संभव है।

चंड—तो इसका क्या फल होगा ?

पुरो०—सर्वनाश! महाराणा लाखासिंहके वंशजोंका मेवाड़पर आधिपत्यका न रहना।

चंड—(आवेश में आकर) यह नहीं हो सकता। किसका सामर्थ्य

है कि हमारे जीते जी मेवाड़की ओर आँख उठाकर देख भी सके। जब तक मातृभूमिके इस सेवकके हाथमें तलवार है तब तक महाराणा क्षेत्रसिंहके वंशजोंका ही मेवाड़में एकाधिपत्य रहेगा।

रघु—भैया, यदि इस जंगलमें कोई शिकार हुआ भी तो हमारे पास जान बूझकर अपनी जान देनेको कौन आयेगा! आगे निविड़ वनमें चलकर शिकार खोजना चाहिए।

चंड—संभव है आगे मिल जाय।

पुरोहित—तो आगे ही न चलें?

सब—हाँ-हां, आगेही चलना ठीक होगा। (जाते हैं।)

परदा बदलता है।

पांचवां दृश्य।

(स्थान—एक घना जंगल, कुमार चंड, रघु, पुरोहित और उनके शेष अनुयायी आते हैं।)

चंड—पुरोहितजी, आज तक चंड कभी शिकारसे खाली हाथ नहीं लौटा। आज शायद —

(सामने एक हिरण भागता दिखाई देता है।)

पुरोहित—कुमार, वह है शिकार, चलाओ तीर।

(चंड तीर चलाता है, हिरण बचकर भाग जाता है।)

कुमार, इसका पीछा करो, भागने न पाये।

(चंड धनुषपर तीर धरे उसके पीछे भागा जाता है।)

यदि कुमारका निशाना व्यर्थ गया तो अनर्थ हो जायगा।

(बिना तीरके धनुषको हाथमें लिये हुए चंड लौटता है । उसके चेहरे का रंग उड़ा हुआ है ।)

पुरोहि०—(कुमारको-खाली हाथ देखकर) अनर्थ हो गया । अब मुझे किसी भारी विपत्तिके आनेकी आशंका है । इससे ईश्वर ही बचाये तो बचाये ।

(दोनों कुमार अपने अपने दायें हाथका गालोंको सहारा दिये चिन्तानिमग्न हो बैठ जाते हैं ।)

चन्दन०—(अपने आप) बनका असाधारण तौर पर निस्तब्ध होना, पुरोहितजी का ठीक समय पर आना और उनके कथनानुसार शिकारका बचकर निकल जाना, ये सबकी सब घटनायें—एकही बातकी द्योतक हैं—भावी विपत्ति !

(एक राजपूत दूत आता है । वह पसीनेसे तर है । मालूम होता है भागा भागा आरहा है । पहले पुरोहितको, फिर क्रमशः कुमारोंको और चन्दनसिंहको प्रणाम करता है ।)

चंड—देवीसिंह, भागे क्यों आरहे हो ?

पुरोहित—(जल्दी से) महाराज सकुशल हैं ?

रघु०—(व्याकुलता से) माताजी तो अच्छी हैं ?

चंड—(घबराया हुआ) पुरोहितजो, कहीं आपके नक्षत्रोंका फल आजही तो नहीं मिलनेका ?

देवी०—(विस्मयसे) बात क्या है ? आप सब लोग इतने परेशान क्यों हैं ?

चंड—तुम जो इतने भागे आरहे हो ।

देवी०—वाह ख़ूब ! मैं तो हर्षका समाचार लेकर भागा आरहा हूं । हर्षके समय पाँवोंकी गति जितनी तेज़ होजाती है,

उतनी विषादमें नहीं। विषादमें तो एक-एक पांव मन-मन भारी प्रतीत होता है, उठता ही नहीं।

चंड—(कुछ मुस्कराता हुआ) हर्षका कौनसा समाचार लेकर आये हो ?

देवी०—कुछ इनाम मिले तो सुनाऊं।

चंड—(कुछ हँसी से) इनाम कामके पहले मिलता है या पीछे ?

देवी०—बहुत अच्छा, पीछे ही देना। तो सुनो—आज दरबारमें मारवाड़के महाराज रणमल्लका दूत आया है।

चंड—वह किसलिए आया है ? क्या युद्धनिमन्त्रण देनेको ?

देवी०—युद्धनिमन्त्रण नहीं, विवाहनिमन्त्रण। वह नारियल भी लाया है।

चन्दनसिंह—नारियल किसके लिए ?

देवी०—किसके लिए ? और किसके लिए ? युवराज के लिए। हमारे यहां युवराजके सिवा और विवाहयोग्य है ही कौन ?

चन्दन०—(मुस्कराकर) महाराज क्या बूढ़े होगये हैं ? अब भी वे दस ब्याह और करनेकी क्षमता रखते हैं।

देवी०—चन्दनसिंहजी, आपने भी ख़ूब कही। इसी बातपर दरबारमें ख़ूब कहकहा मचा था।

चन्दन०—क्या हुआ था ?

देवी०—जब दूतने कहा कि महाराजने युवराज चंड के लिए नारियल भेजा है, तो उस समय राणाजी को एक अच्छी मज़ाक सूझी।

चंड—क्या ?

देवी०—उन्होंने कहा—'मैंने समझा था कि यह मेरे लिए होगा।' फिर अपनी डाढ़ी के सफेद बालों को हाथमें लेकर कहा—ठीक

है भैया, कुमारके लिये ही भेजा होगा, मुझ जैसे सफेद डाढ़ी वालेको अब कौन पूछेगा।

(यह सुनतेही चंडके मस्तककी हर्षरेखायें विषादमें बदल जाती हैं।)

चंड—(कुछ विषादसे) तो फिर ?

देवी०—फिर क्या ! सब लोग ठठाकर हंसने लगे। हंसनेकी बातही थी। लो भैया, अबतो सुनली न बात ! अब इनाम मिल जाय।

चंड—(दीर्घ निश्वास लेकर) देवीसिंह, जो ब्याह करेगा वही तुझे इनाम देगा।

देवी०—क्या ख़ूब ! कैसे पल्ला छुड़ा रहे हैं ! विवाहके समय जो मिलेगा सो तो महाराज से मिलेगा ही।

चंड—अब भी महाराज ही देंगे।

(सब लोग चंड के मुखकी ओर देखने लग जाते हैं।)

रघु०—भैया, बात क्या है, हर्षके समयमें विषाद कैसा !

चंड—रघु, तुम न समझोगे, तुम अभी बच्चे हो। चलो पिताजी ने बुला भेजा है।

(सभी उदास होकर चले जाते हैं।)

(परदा उठता है)

छठा दृश्य

(महाराणा लाखासिंहका दरबार । महाराणा उच्चासनपर बैठे हैं । उनके दायीं ओर प्रधान मन्त्री, और बायीं ओर राजपुरोहितके आसनपर मारवाड़के पुरोहित बैठे हैं । उनके पासही मारवाड़दूत और दोनों ओर अन्यान्य सभासद यथास्थान बैठे हैं ।)

ब्राह्मण—महाराज, कुमारने कुछ अधिक देर कर दी है ।

महाराणा—हां, देर तो कुछ अधिक अवश्य हो गई है । शायद कुमार आखेट करता-करता कहीं दूर निकल गया होगा । मुझे इस विलम्बका खेद है ।

प्रधान—कुछ अधिक चिन्ताकी बात नहीं, वे आते ही होंगे । कुमार रघुदेवसिंह भी उनके साथ हैं ।

दूत—महाराज, जब आपने नारियल स्वीकार कर लिया तो कुमारसे पूँछनेकी क्या आवश्यकता ! वे आपकी आज्ञाके बाहर थोड़ा हैं !

महाराणा—बात तो ठीक है । जो मैं कहूंगा उसमें चंड ननु नच नहीं करेगा, तो भी उसकी स्वीकृति आवश्यक है, आखिर विवाह तो उसी को करना है ।

एक सरदार—महाराणाजी यथार्थ कह रहे हैं, भैया ! जब लड़का वयस्क होजाय तो उसे सखा समझना चाहिये । कोई भी कार्य जिसका उससे सम्बन्ध हो, उसकी अनुमति लिये बिना नहीं करना चाहिये ।

(कुमार चंड कुमार रघुदेवसिंहके साथ प्रवेश करता है । दोनों कुमार पहले पिताको, पुनः प्रधानमन्त्रीको और फिर ब्राह्मणको प्रणाम कर यथास्थान बैठ जाते हैं ।)

चंड—(खड़े होकर) महाराजने मुझे स्मरण किया है ?

महाराणा—हां, बेटा, मैंने ही देवीसिंहको तुम्हें बुलवानेको भेजा था।

चंड—मैं हाज़िर हूं।

महाराणा—आज ये दो सज्जन (ब्राह्मण और दूतकी ओर निर्देश कर) माड़वाड़से आये हैं। इनमें से ये (ब्राह्मणकी ओर निर्देश कर) मारवाड़ राज्यके कुलपुरोहित हैं और ये (दूतकी ओर निर्देश कर) उनके प्रधान दूत हैं।

चंड—हमारा सौभाग्य जो इनके दर्शन हुए हैं। इनके आनेका अभिप्राय ?

महाराज—मारवाड़नरेश महाराज रणमल्लने अपनी पुत्रीका नारियल भेजा है और मैंने स्वीकार कर लिया है !

चंड—मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है कि आपने इसे स्वीकार कर लिया है। जिन आशाओंसे प्रभावित होकर महाराजने नारियल भेजा होगा उनको पूर्ण करना हमारा कर्तव्य होना चाहिये। पिताजी, आप निश्शंक रहें महाराज मारवाड़नरेशकी पुत्री के चरणोंपर यह मस्तक उसी तरह झुकेगा जिस तरह अपनी माताके।

महाराणा—क्या कह रहे हो बेटा ? शायद तुमने मेरा आशय नहीं समझा। मैंने यह नारियल तुम्हारे लिये स्वीकार किया है, अपने लिये नहीं।

चंड—विधिका विधान होचुका पिताजी। जिसे मैं इस मुखसे माता कह चुका, उसे अब इसी मुखसे पत्नी न कहूँगा।

महाराणा—मुझे अधिक लज्जित न करो बेटा, यह विवाह क्या इस सफेद डाढ़ीके संगत है ?

चंड—धनुषसे छूटा तीर कभी लौटा है जो चंडके मुखसे निकला हुआ वचन लौटेगा ?

महाराणा—बातका बतंगड़ न बनाओ चंड, हठ को छोड़ो। मुंह से कई बातें अकस्मात् निकल जाया करती हैं, उनका इतना विचार करना बुद्धिमानी नहीं।

चंड—पिता जी,

नदीकान्त जलराशि जदपि सीमा तज जावे।
तेजपुंज रवि नखतराज शीतल हो जावे।
हिमदीधति निधिजात चन्द्र पावक बरसावे।
हिमागार गिरिजात रसातलमें धस जावे।
तोभी बापा का कुलज चंड वचन छोड़े नहीं।
पग आगे बढ़ गया जो पुन: उसे मोड़े नहीं।

महाराणा—नारियलका लौटा देना हमारे लिये लज्जाजनक और अपमानास्पद होगा। आज तक हमारे कुलसे किसीका नारियल नहीं लौटाया गया।

प्रधान—कुमार, मेवाड़ाधीश महाराज रणमल्लके राज्यकी सीमा हमारे राज्यकी सीमासे सटी हुई है, यदि हमने नारियल लौटा दिया तो एक प्रबल प्रतिवेशी शासकको सदाके लिये अपना शत्रु बनालेंगे। मारवाड़ जैसे राज्यको अपना शत्रु बना लेना कहांकी बुद्धिमानी है!

महाराणा—दूसरी बात यह है कि मारवाड़ और मेवाड़में कुलक्रमागत सख्य रहा है, मैं अपने कुकार्यसे उसे टूटने न दूंगा।

चंड—मैंने कब कहा कि आप मारवाड़से शत्रुता गाँठें या उससे सख्य तोड़ दें ?

महाराणा—तो नारियल अस्वीकार करनेका और क्या परिणाम होगा ?

चंड—आपने उसे स्वीकार तो कर लिया है।

महाराणा—(क्रोधसे) चंड, मुझे मालूम होता है कि तू मुझे निर्लज्जता और अपमानकी कालिमासे पोतनेको तुला है। पर तुझे स्मरण रहे कि यह नारियल अब लौट कर नहीं जायगा।

चंड—मैं भी तो यही चाहता हूं पिता जी।

महाराणा—(और भी क्रोधसे) यदि तू अपने दुराग्रहको नहीं, छोड़ता तो इस नारियलको मैं अपने लिये ही ग्रहण करता हूं।

(सभा में सन्नाटा छा जाता है। प्रत्येक सभासद दूसरेके मुखकी ओर देखने लगता है।)

एक दरबारी—धर्मावतार क्रोधवश होकर कोई ऐसा कार्य न कीजिये जिसका पीछे पश्चात्ताप करना पड़े। इसलिए कुमारको इस विषयपर मनन करने का थोड़ा और अवसर दीजिये।

चंड—मुझे और अवसर देनेका कुछ फल न होगा। मैंने जो कुछ किया है बहुत विचारके वाद किया है।

महाराणा—(निराश होकर, नरमी से) बेटा, तूने अच्छा नहीं किया। मेरे जीवनकी आरामसे चलती हुई नैयामें तूने एक भयङ्कर छिद्र कर दिया है। अब यह किनारेपर पहुंचने से पूर्व ही रसातलमें पहुँच जायगी। निद्राकी सुखमय गोदमें पड़ा हुआ मैं अत्याह्लादक स्वप्नोंके जिस जगतमें विचर रहा था, तूने एक ही आघातसे उसका सर्वनाश कर दिया है। मैं सोच रहा था कि राज्यभार तुम्हारे कन्धोंपर रख कर मैं आयुके शेष दिन भगवान्‌की भक्तिमें व्यतीत करूंगा। पर.........(गहरी सोच मे पड़ जाता है)

प्रधान—महाराज, युवराजने राज्यभार उठानेसे तो इनकार नहीं किया।

महाराणा—प्रधानजी, महाराज रणमल्लने हमारे पास नारियल इसलिये भेजा है कि उनका दौहित्र हमारे राज्यका अधिकारी बने। चंडको राज्य देकर मैं उनकी पुत्रीके पुत्रको राज्यासनसे वञ्चित कैसे कर सकता हूं? इसलिए मैं यह निर्णय भी इसी समय करता हूँ कि मेरे बाद मारवाड़राज की पुत्री हंसाका पुत्र ही मेवाड़के सिंहासन पर बैठनेका अधिकारी होगा।

(इस बातको सुनतेही सब सभासदों के चेहरोंके रंग उड़ जाते हैं और सबके सब चंड की ओर देखने लग जाते हैं)

चंड—(बडे हर्ष के साथ) पिताजी, मैं आपकी आज्ञाके सामने अपना मस्तक झुकाता हूं। मुझे यह सहर्ष स्वीकृत है और भगवान शङ्करकी शपथ लेकर कहता हूं कि माता हंसाका पुत्र ही मेवाड़के सिंहासनपर निरापद बैठेगा। मैं और मेरे वंशज उसकी आज्ञाका पालन करना अपना सौभाग्य मानेंगे।

सब सभासद—(एक स्वरसे) युवराज चंड की जय!

महाराणा—(सजल नयनोंके साथ) बेटा!

चंड—पिताजी, आप इस बात का तनिक भी शोक न करें। इस घटनासे मेरे हृदय परसे चिन्ता का एक भारी पत्थर उठ गया है। अब मुझे विश्वास हो गया है कि सिसोदिया-वंश महाराणा लाखासिंह ही तक समाप्त न हो जायगा।

महाराणा—बेटा, जो कुछ तुम कह रहे हो मेरी समझ में नहीं आरहा।

रघुदेव—पिताजी, आजही प्रात:काल पुरोहितजीने भैयाकी जन्मपत्री देखकर बताया था कि हममें से जो कोई भी आज शिकारको तीरसे बेधन करनेमें सफल होगा वही मेवाड़की गद्दी पर बैठेगा।

महाराणा—(उत्सुकतासे) तो फिर ?

रघुदेव—बहुत समय तक शिकारकी प्रतीक्षा करनेके बाद एक हिरण दिखाई दिया जो हम दोनों के लक्ष्योंसे बचकर निकल गया।

महाराणा—(विस्मयसे) दोनों राजपूतसिंह-शावकोंसे बचकर निकल गया ! तो फिर ?

रघुदेव—पुरोहितजीने इस घटनाका यह फल निकाला कि हम दोनोंमें से मेवाड़की गद्दी पर कोई भी न बैठ सकेगा। उस समयसे भैयाको इस बातकी चिन्ता घुनकी तरह काट रही है कि कहीं हम दोनोंके होते भी मेवाड़ सिसोदियों के हाथसे निकल न जाय।

प्रधान—इसलिए महाराजका यह नया सम्बन्ध मुझे दैवी प्रेरणा मालूम होती है।

चंड—(मेवाड़के पुरोहितसे) पुरोहितजी, आप जाकर मारवाड़-नरेश से कह दीजिये कि मेवाड़ के वर्तमान महाराणाने मारवाड़-राजकुमारीका नारियल स्वीकार कर लिया है। साथ ही यह भी स्पष्ट कर देना कि युवराज चंडने यह स्वीकार कर लिया है कि मेवाड़के राज्यका अधिकार माता हंसाके पुत्रका ही होगा।

पुरोहित—कुमार, मैं आपके त्यागकी प्रशंसा करता हूं। जो त्याग इस समय आप कर रहे हैं ऐसा पहले त्रेतायुगमें भीष्मजीने ही किया था। आप इस युगके भीष्म हैं।

(प्रस्थान)

(यवनिका पतन

द्वितीय अंक

पहला दृश्य

(स्थान—मंडोर, राजप्रासादका एक कमरा । कमरे के बीचमें दूसरे कमरेको जानेका एक दरवाज़ा है। उस पर रेशमी परदा टंगा है)

(महाराजा और महाराणी बातें करतीं करतीं आती हैं ।)

राणी—पुरोहित जीको गये बहुत समय हो गया है, अब तक वे न स्वयं लौटे हैं और नाहीं उनका कोई सन्देश ही आया है। मेरे चित्तमें प्रतिक्षण सन्देहकी मात्रा बढ़ती जारही है।

रणमल्ल—सन्देह की कोई बात नहीं। एक तो जाने-आनेमें ही बहुत समय लग जाता है, दूसरे, कार्य भी तो कोई ऐसा वैसा नहीं, आखिर दो व्यक्तियोंके समूचे जीवनका प्रश्न है, कुछ सोच विचार कर रहे होंगे।

राणी—आपने तो कहा था कि पुरोहित जीके पहुँचने की देर है, महाराणा नारियलको तुरन्त स्वीकार कर लेंगे।

रणमल्ल—मेरा तो अब भी यही विचार है। बापा रावलसे लेकर अब तक मेवाड़वालोंने कभीं कोई नारियल नहीं लौटाया। राजपूत कट मरना पसन्द करेंगे पर ऐसा कदापि न करेंगे।

राणी—यदि यह कार्य सुसम्पन्न हो गया तो मेरी बच्ची के भाग्य खुल जायँगे।

रणमल्ल—बात भी ठीक है, एक तो मेवाड़ जैसा सुसम्पन्न देश, दूसरे,

चंड जैसा वर, दोनोंसे सम्बन्ध होना हमारे गौरवकी बात है।

(दरबान आता है)

दरबान—(प्रणाम कर) महाराज, पुरोहित जी पधारे हैं।

रणमल्ल—उन्हें शीघ्र भेज दो।

(दरबान जाता है)

राणी—(हाथ जोड़कर और ध्यानावस्थित होकर) मधुसूदन, तुम सदा हमारे कार्य पूर्ण करते रहे हो, अब भी हमारी लाज तुम्हारे ही हाथ है।

(पुरोहित आते हैं, महाराज और महाराणी उन्हें प्रणाम करते हैं)

राणी—(उत्सुकता से) पुरोहित जी, कार्य हो गया न ?

(कमरेके बीच वाले द्वारके परदेको कुछ उठाकर हंसा झाँकती ह और फिर परदा छोड़ देती है।)

पुरोहित—(कुछ अनमना सा होकर) हां, हो तो गया, पर.........

रणमल्ल—'पर' क्या पुरोहित जी ?

पुरोहित—पर चंड से नहीं हुआ।

(परदे के भीतर से चीत्कार की आवाज आती है। महाराज जल्दी उठकर अन्दर जाते हैं और बेहोश पड़ी हुई हंसा कुमारीको उठाकर लाते हैं। इतनेमें राजकुमारी की सखियां वसुमती और प्रभा भी उसके चीत्कारको सुनकर आ जाती हैं। सब मिलकर जलसेचन आदि उपचारोंसे उसे होश में लाते हैं।)

राणी—(हंसाको गोदमें लेकर) क्या हुआ था बेटी ?

हंसा—(अर्धसंज्ञ अवस्थामें) मैंने एक भयंकर स्वप्न देखा था।

राणा—कैसा स्वप्न !

हंसा—(जैसे अपने आप) एक वृक्ष था—अति सुन्दर वृक्ष था, अति सुवासित वृक्ष था। मैं उसके नीचे खड़ी थी, उसकी छाया में खड़ी थी। उसपर लगने वाले मधुर फलोंके आस्वादन के स्वप्न देख रही थी कि उसी दम (चीत्कार करके बेहोश होने लगती है। वसुमती और प्रभा उसे फिर होशमें लाती हैं।

(होशमें आकर) उसी दम भयंकर वज्रपात हुआ और वह मेरा वृक्ष, स्वप्न के मधुर फलों के साथ भूमिपर गिर पड़ा ! (रोने लगती है)

राणी—पर तू सोई तो न थी। अभी तो मैं तुझे जागती छोड़ आई थी।

हंसा—वह जागृत अवस्था का स्वप्न था।

राणी—पगली ! वसु, इसे ले जाकर ज़रा आराम दो। फिर वैद्यराजजी को सन्देश भेजो।

वसुमती—वैद्यराज की आवश्यकता न होगी। हम कुमारीकी व्यथा जानती हैं।

(दोनों हंसाको आश्रय देकर लेजाती हैं)

रणमल्ल—(पुरोहितसे) पुरोहितजी, हम अपकी पहेली नहीं समझ सके। यदि कुमारी की सगाई चंडसे नहीं हुई तो किससे हुई है ?

पुरोहित—अभी सुनाता हूं। आपसे विदा होकर मैं महाराणा लाखासिंह के पास पहुँचा। उस समय महाराणा दरबारमें थे। जब मैंने नारियल के साथ आपका सन्देश दिया तो

महाराणाने आपका नारियल युवराज चंडके लिये स्वीकार कर लिया।

राणी—चंडके लिये स्वीकार कर लिया? ठीक तो किया। वह चंडके लिए तो था ही। फिर आप कैसे कहते हैं कि हंसाकी सगाई युवराजसे नहीं हुई?

पुरोहित—वह तो मैं अबभी कहता हूँ। सुनिये। नारियल स्वीकार तो कर लिया, पर साथ ही उपहासरूपमें कहने लगे—अब हम जैसे बूढ़ोंको कौन नारियल भेजेगा!

रणमल्ल—फिर क्या हुआ?

पुरोहित—महाराणाने अपना दूत युवराजको बुलाने के लिए भेजा। उस दूतने महाराणाके वचन ज्यों के त्यों युवराज को कह दिये।

रणमल्ल—तब तो अनर्थ हो गया, चंड जैसा हठी आजकल मेवाड़-भरमें कोई नहीं। उसने अवश्य महाराणाके शब्दों पर नया रंग चढ़ा दिया होगा।

पुरोहित—अवश्य! उसने महाराणासे कहा कि जिसे आपने उपहासमात्र में ही चाहे, पत्नी कह दिया वह मेरी माता होगई। माताको पत्नी मैं कभी मानने का नहीं!

राणी—महाराजने चंड को समझाया नहीं?

पुरोहित—बहुत समझाया। पहले अनुनय-विनय किया, फिर क्रोध किया और धमकाया भी, पर वह टससे मस नहीं हुआ। अन्तमें नारियलको लौटाना अपने वंशकी मर्यादाके विरुद्ध समझकर महाराणागे नारियल अपने लिये स्वीकार कर लिया।

रागी--(व्याकुलसी होकर) अपने लिये ! क्या हंसाका ब्याह उस बूढ़ेके साथ होगा ! कदापि नहीं, मैं इस अनमेल विवाहको कभी नहीं होने दूंगी।

रणमल्ल--पुरोहितजी को अपनी बात तो समाप्त कर लेने दो प्रिये, फिर इस विषय पर विचार किया जायगा। तत्पश्चात् क्या हुआ पुरोहित जो ?

पुरोहित--नारियल स्वीकार करनेके बाद महाराणा ने यह प्रण किया कि उनके बाद मेवाड़ राज्यका अधिकारी हंसाका पुत्र होगा।

रणमल्ल--तो चंडने इसके विरुद्ध कुछ न कहा ?

पुरोहित--विरुद्ध नहीं कहा इतना ही नहीं,बल्कि उलटे हर्ष प्रकट किया और प्रण किया कि मैं हंसाकी सन्तानको अपने हाथसे सिंहासनपर बैठा कर उसका आज्ञापालक सेवक बन कर रहूँगा।

रणमल्ल--पुरोहित जी, चंडकुमारने तो वह किया है जो अब तक किसी ने नहीं किया।

रागी--जिस मेवाड़को हस्तगत करनेके लिये असंख्य नरमुंड रणाग्निकुण्ड में स्वाहा होते रहे हैं--उसी मेवाड़-राज्यको एक साधारण सी बात केलिये ठुकरा देना एक ऐसी घटना है जो संसार के इतिहासमें एक अभूतपूर्व सत्ता रखेगी।

पुरोहित--ऐसी परिस्थितिको ध्यानमें रखते हुए आप दोनोंकी इस सम्बन्धके विषयमें क्या धारणा है ?

रागी--परिस्थिति चाहे कैसी भी हो, मैं अपनी कन्याका जीवन नष्ट नहीं करूंगी।

रणमल्ल--क्या यह भी सोचा है कि हंसका विवाह यदि चंडसे होगा

तो उसे राजरानी होनेका सौभाग्य राणा लाखासिंहकी मृत्युके बाद प्राप्त होगा और उसके पुत्रको मेवाड़के राज्यासन पर आरूढ़ होनेका शायद कभी अवसर ही न मिलेगा।

राणी—पर अब!

रणमल्ल - अब! अब विवाहके समकाल ही राणी और कुछ ही समय बाद राजमाता होने का सौभाग्य उसे प्राप्त हो जायगा। राजपूत रमणीके लिए और क्या चाहिये?

राणी—हंसाकी जैसे मैं माता हूं, उसी तरह आप भी तो पिता हैं। इसलिए यदि इस सम्बन्धमें आपको कुछ अच्छाई मालूम होती हो तो मैं इसमें बाधा करने वाली कौन हूं!

पुरोहित—ईश्वर जो कुछ करता है अच्छा करता है।

रणमल्ल—ईश्वर दयालु है, वह जो कुछ करे हमें स्वीकृत है। अब चलें, देखना है कि हंसा कैसी है!

(तीनों जाते हैं)

(परदा उठता है।

दूसरा दृश्य

(स्थान—मारवाड़, मंडोरके राजप्रासादका क्रीडोद्यान। उसके एक कोनेमें संगमरमरके बने एक चबूतरेपर कुमारी हंसा और उसकी सहचरियां वसुमती और प्रभा बैठी बातें कर रही हैं। हंसा कुछ उदाससी है।)

वसुमती—हंसा बहिन, जो विधिविधान होता है, वह होकर ही रहता है, उसके आगे झुकना ही पड़ता है।

प्रभा—इसमें क्या सन्देह! जो कुछ माथेपर लिखा होता है वह तो

होकर ही रहता है फिर कोई अपने शरीरको चिन्ताकी ज्वालामें क्यों भस्म करता रहे ?

वसुमती—माता सीता, सती शैव्या और महाराणी द्रौपदी जैसी सती कुलांगनाओंका भी पीछा उनके अदृष्ट कर्मोंने न छोड़ा तो हम तुम कौन हैं !

हंसा—ये सब बातें तो मैं भी समझती हूँ, पर ज्यों ही उस घटना का ध्यानमात्र ही आता है तो मन एकदम बैठ जाता है, आँखों के सामनेका समूचा संसार अन्धकारमय दीखने लगता है।

वसुमती—मैं तो जब महाराणाजीके त्यागका विचार करती हूं तो उनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकती। इस ढलती अवस्थामें जब कि प्रत्येक प्राणी संसारबन्धनोंको तोड़कर भगवद्भक्तिमें जीवन के शेष दिन काटनेकी अभिलाषा रखता है, फिर नये सिरेसे वे संसारके उसी पचड़ेमें आ फंसे हैं। जो कुछ भी उन्होंने किया है किसी भोगविलासकी लालसासे नहीं, बल्कि कुलमर्यादाकी रक्षा के लिए किया है। पर उस हठी कुलकलंक—

ंसा—बस बहिन, आगे और शब्द मुखसे न निकालो। मेरी भक्ति, सेवा-शुश्रूषाको, जिन्हें मैं उनके चरणों में अर्पण करनेके मनसूबे बांध रही थीं, चाहे उन्होंने ठुकरा दिया है, तो भी यह जिह्वा उनके लिये एक भी अपशब्द निकालनेको और कान उसे सुनने को तैयार नहीं हैं। उन्होंने भी जो कुछ किया है, बहुत उच्च आदर्शसे प्रेरित होकर किया है।

प्रभा—यह तो मैं भी मानती हूं। किसीके ब्याह न करनेकी बात तो साधारण है, पर अपनी विमाताके पुत्रके सिरपर

अपना राजमुकुट स्वयं रखनेका प्रण करना एक ऐसी बात है, जिसका उल्लेख इस युगके इतिहासके किसी पन्नेपर भी नहीं मिलता।

वसुमती—विशेष परिस्थितियों से उत्तेजित होकर उन्होंने यह प्रण कर तो दिया है, पर जब उसे पूरा करेंगे तो मानूंगी!

प्रभा—राजपूत बात के धनी होते हैं, वे सिर दे देते हैं पर दिया वचन नहीं छोड़ते।

(हंसाकी उदासीनता कम नहीं होती)

छोड़ो इन बातोंको कुमारीजी, आओ ज़रा बगियामें घूमें-फिरें और झूला झूलें।

हंसा—इस समय मनको कुछभी अच्छा नहीं लग रहा।

वसुमती—छोड़ो चंडका विचार। जो तुम्हें अपने हृदयासनपर बैठाना नहीं चाहता, उसे बार बार अपना हृदय खोलकर वहाँ लानेका यत्न करना कहाँ की बुद्धिमानी है!

हंसा—यह बात नहीं, उन्हें तो मैं वहां से कबकी निकाल चुकी हूं। अब मैं माता हूं और वे पुत्र हैं।

प्रभा—तो क्या महाराणाकी अवस्थाकी चिन्ता कर रही हो? उनकी आयु भी बहुत बड़ी नहीं है—यही पचास-पचपन होगी। यह आयु भी कुछ बड़ी है? पुरुषत्वका मान आयुसे नहीं, गुणों से होता है।

हंसा—मुझे उनकी आयुका तनिक भी ध्यान नहीं। हम राजपूतनियों की आयुरूपी पतङ्गकी डोर भी कौनसी लम्बी होती है। अभी वह पतङ्ग जीवनाकाशमें ऊँचा जाने ही नहीं पाता कि वायुके एक ही प्रबल झोंके से उसकी डोर कट जाता है। यदि दो-चार दिन वे जीवित रहती भी हैं तो भी माताके

दुग्धके साथ ही जो त्याग का पाठ उन्हें पढ़ाया जाता है उसीके अनुसार उनकी समग्र जीवनसरणी ढलती रहती है--यहां तक कि विवाहके समय भी जिस अग्निकुंडकी वे भांवर लेती हैं, मरणपर्यन्त उसीकी अग्निशिखाके चक्कर पतङ्गकी तरह काटती रहती हैं और एक दिन उसीमें जल कर राख होजाती हैं।

वसुमती—छोड़ो इन बातोंको राजकुमारी। जब कर्मगति कभी टल ही नहीं सकती तो फिर दो चार दिन के इस जीवनको अनुतापकी आगमें क्यों जलाया जाय!

हंसा--कर्मगति! जीवनकी विषम समस्याओंको हल करनेके लिए मनुष्यके पास एक ही साधन है—कर्मगति। जब किसी अबलाके जीवनके एकमात्र ही आधारको कुटिलकाज़ बलात् छीनकर उसे निस्सहाय कर दर-दरकी भिखारिन बना देता है, तो उस बेचारीकी अन्तरात्मामें धधकती हुई शोक-ज्वालाको इतना ही कहकर शान्त करनेका यत्न किया जाता है कि इसके कर्मोंका यही विधान था। जब पुत्रके ऊपर से पिताकी छत्रछाया हट जाती है, या वृद्ध पिताके हाथसे बुढ़ापेकी लकड़ी—पुत्र छिन जाता है, तो लोग इस एक ही वाक्य से अपना समाधान कर लेते हैं--हमारे कर्म खोटे थे। जब प्रकृतिका भूगर्भसे निकला हुआ एक ही निश्वास गगनचुम्बी अट्टालिकाओंसे लेकर छोटेसे छोटे झोंपड़े तक—सबको धराशायी कर उनमें चिरसञ्चित आशा-पुंजको हृदयमें लेकर सोए हुए असंख्य प्राणियोंको ज यांकर उनकी आशाओंको चूर्ण कर देता है तो पता है लोग क्या कह कर धैर्य धरते हैं?--वे कहते हैं--दैवके मुकाबलेमें बेचारा

मनुष्य क्या कर सकता है! दुर्भिक्षके समय जब अगण्य नर अन्नके दाने-दानेके लिए तड़पते हैं तो उनके मुखसे ये ही दो शब्द निकलते हैं—हा दुर्दैव! और इन शब्दोंके साथ ही उनके प्राण भी अकालमें ही कालगर्भमें विलीन हो जाते हैं। (व्यंग्यसे) हमारे पूर्वजोंने 'कर्मगति—दैवगति' एक ऐसी रामबाण औषध बना रक्खी है बहिन, कि जिसके सेवनसे वे समझते हैं कि आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक, सबके सब रोग मिट जाते हैं।

वसुमती—जरा सोचो तो कुमारी, यदि यह औषध भी मनुष्यके पास न होती तो उसकी क्या दशा होती! मनुष्यकी अन्तरात्मा सदा अशान्तिकी दारुण ज्वालासे जलती ही रहती। एक अकिञ्चन भिखारी जिसके पास खानेको अन्न का एक दाना भी नहीं, और तन ढापनेको एक फटा पुराना चिथड़ा भी नहीं, उन धनवानोंको देख कर जो षड्रस भोजन पाकर भी तृप्त नहीं होते, जिनकी वासनापूर्ति बहुमूल्य रेशमी वस्त्रोंसे भी नहीं होती, अपने हृदयरक्तका घूंट ही पीकर क्यों चुप हो बैठता है? एक निर्धन मज़दूर आषाढ़-जेठकी दुपहरीकी कड़ी धूपमें और पौष-मासकी प्रात:कालीन सर्दीमें दो चार आने ही दैनिक वृत्ति पाकर धनवानोंके लिए अट्टालिकायें क्यों खड़ा करता है? बीस-पच्चीस रुपये मासिक पाने वाला बेचारा सैनिक बाल-बच्चों का मोह छोड़कर अपने प्राणोंको हथेलीपर रक्खे मौतके मुंहमें जानेका साहस क्यों करता है? यदि मनुष्यके पास यह कर्म-दैव सिद्धान्तका आधार न होता बहिन, तो संसार में सदा देवासुर-संग्राम छिड़ा रहता।

प्रभा--छोड़ो इन बातोंको वसु ! इन समस्याओंको हल करना उन्हीं तक रहने दो जिनका यह काम है। एक अनाड़ी ज्यों ज्यों किसी विकट समस्याके सुलझानेका प्रयास करता है त्यों त्यों उसमें अधिकाधिक उलझता जाता है। चलो आओ (दोनोंको दोनों हाथोंसे पकड़कर खींच लाती है) ज़रा बाग की सैर करें। ऋतुराजके राज्यमें दुःख और विषादका स्थान नहीं हैं। देखो फूल-फूल यौवनोन्मादसे वायुमंडलको सुवासित कर रहा है। पत्ता-पत्ता आनन्दसे झूल रहा है।

(आनन्द से गाती है)

इस बगियाकी छटा निराली।
निरख निरख चितवन वसन्तकी फूट रही डाली-डाली,
कोयल कूक रही पंचममें नृत्य करे केकीपाली ॥
मादक मधुर मधुकरी पीकर मधुरसकी प्याली-प्याली,
मदिरोन्मत्त फिरे गुंजारत फूल-फूल डाली-डाली।

वसु—(गाती है) पुष्प-वाटिका महक रही है, नये फूल-पत्तों वाली
चंपक, शेफालिका, मालती देख खुशी है बनमाली ॥

हंसा—(गाती है) माधवके आगमन-हेतु यह नवयौवन संचार हुआ
युवक-युवतिगण नाच रहे हैं बजा-बजा कर कर-ताली ॥

(महाराज रणमल्ल के साथ महाराणी आती हैं और एक कोने में अलक्षित खड़ी हो जाती हैं)

हंसा--(गाती है) पतझड़से सूखी डालोंमे हरियाली संचरित हुई।
अवसादोन्मुख शुष्क नसोंमें फिरसे नयी जान डाली ॥

रणमल्ल--(राणीसे) देखा ! मेरा ही कहना ठीक हुआ न ! मैंने कहा न था कि हंसा इस सम्बन्ध से सन्तुष्ट है ? संसारमें कौन नारी है जो महाराणी पदको अस्वीकार करेगी ?

राणी--यदि हंसा सन्तुष्ट है तो मेरे हृदय परसे एक बड़ा भारी बोझ उतर गया है। नहीं तो, आठों याम मुझे उसीके भविष्यकी चिन्ता रहती रही है।

रणमल्ल--यदि तुम उसकी मां हो तो मैं भी तो उसका कोई हूं। क्या मुझे उसके भविष्यकी चिन्ता नहीं है ?

(हंसा और उसकी दोनों सहचरियां बातें करतीं करतीं उन्हींके पास पहुँच जाती हैं और उन्हें देखकर लजाने लगती हैं।)

रणमल्ल--(हंसासे) हमसे लज्जा कैसी बेटी ! यदि हमारी उपस्थिति तुम्हारे आनन्दमें वाधा डाल रही है तो हम चले जाते हैं।

हंसा--लज्जाकी कोई बात नहीं पिताजी (असली बात टाल कर) चलो हमभी चलती हैं।

(बातें करते करते आगे आगे महाराज रणमल्ल और राणी और पीछे पीछे हंसा और उसकी दोनों सखियां चली जाती हैं।)

(परदा गिरता है।)

तीसरा दृश्य

(स्थान—चित्तौड़, राजमहल के अन्त:पुर का उद्यान)

(हंसा धीरे धीरे आती है।)

हंसा--वे अभी तक नहीं आये। (उद्यान की ओर देख कर) ये खिले हुए फूल कैसे सुन्दर दीख रहे हैं! जो भी इन्हें देखता है इन पर लट्टू हो जाता है, घण्टों बैठ कर इन्हींको

देखता रहता है, फिर भी मन नहीं भरता। इनके सौरभ-कणों को लिये बहती हुई वायुसे मस्त होकर उसे अपनी सुध-बुध भूल जाती है। कैसे भाग्यवान हैं ये फूल! पर नहीं, ये भी हम अबलाओं जैसे भाग्यहीन हैं। सौन्दर्य और सौरभ ही इनके सर्वनाशके कारण होते हैं। जिनकी आंखोंको तृप्त करते हैं उन्हींकी वासनाओंके शिकार हो जाते हैं। जब तक इनमें यौवनका सौरभ रहता है, सिर पर रहते हैं, गलेका हार बनते हैं, पर ज्योंही रस सूखने से इनका सौरभ गया, इन्हें तोड़ताड़ कर फेंक दिया जाता है। बेचारे कहां सिरपर होते हैं और कहाँ पांवके नीचे मसले जा रहे है! (दीर्घ निश्वास लेती है।) (एक ओर देख कर) वे आ रहे हैं। (दूसरी ओर पाँवोंकी आहट सुनाई देती है। उधर देखकर) वे भी आ रहे हैं। (आकाशकी ओर देख कर और हाथ जोड़ कर) घनश्याम, मुझे साहस प्रदान करो कि उनके—उन दोनोंके समक्ष मैं विचलित न होऊं, अपने मन को नियन्त्रणमें रख सकूं। कोई है? (दासी आती है) (दासीसे) तीन चौकियां लाकर यहां रक्खो। (दासी जाती है और कुछ आदामयोंसे चौकियां उठवाकर लाती है और वहां रखती है। एकपर हंसा बैठ जाती है। महाराज लाखासिंह प्रवेश करते हैं।)

लाखासिंह—यह कुमुदिनी किस चन्द्रके उदयकी प्रतीक्षामें है?

हंसा—(उठ कर और उनकी ओर देखकर, फिर लज्जासे आंखोंको नीचे झुकाकर) उसी चन्द्र की ओर जिसे देखते ही यह हृदय-कालिका खिल उठती है (मन में उद्विग्नता करती हुई) मैंने

यह क्या कह दिया है ! कहीं वे इस का अर्थ और ही न करलें !

(लाखासिंह एक चौकी पर बैठता है, हंसा भी बैठती है)

लाखासिंह—कलिकाके लिये पूर्णचन्द्र चाहिये हंसा, परन्तु तुम्हारा चन्द्र पूर्णिमाके यौवनके बाद अमावस्याकी कराल रात्रिकी ओर जा रहा है ।

हंसा—इस कलिकाका जीवन इसी चन्द्रके साथ सम्बद्ध है। ज्यों ज्यों इसकी कान्ति क्षीण होती जायगी, यह भी मुरझाती जायगी ।

लाखासिंह—(आंखों में आंसू लाकर) इस यौवन और इस बुढ़ापेका मेल क्या संगत है ? जीवन और मृत्यु का मेल कभी सम्भव है ? जो अवस्था वनयात्री की है उसमें फिरसे संसारके पचड़ेमें आ फँसना कहांकी बुद्धिमानी है ! पर मैं विवश था, परिस्थितियोंने इस मार्गका अनुसरण करनेको बाधित कर दिया था ।

हंसा—(सिर नीचे किए हुए) मुझे सब पता है, इसमें आपका कुछ दोष नहीं है । आपने वही किया जो सच्चे राजपूत करते आये हैं, आपने राजपूती शानको चार चाँद लगा दिये हैं । ईश्वरसे मैं यही चाहती हूं कि जिस मार्गपर उसने हमें चलाया है उसकी यात्राको हम दोनों सततसङ्गी होकर सफलतासे समाप्त करें ।

लाखासिंह—तुम आदर्श राजपूत-जाया हो प्रिये ! यद्यपि मेरे पास यौवन नहीं, तो भी प्रेमका अगाध स्रोत तो है ।

हंसा—मुझे आपका यौवन नहीं, प्रेम चाहिये । यौवन बरसाती नदी

की बाढ़ है और प्रेम मन्दाकिनीकी सततवाहिनी पवित्र धारा है।

लाखासिंह—उसी प्रेममयी मन्दाकिनीकी पवित्र धारासे तुम्हें सदा तृप्त रक्खूंगा।

हंसा—ईश्वरसे यही विनय है कि वह मुझे आपकी प्रेम-पात्री बनने की योग्यता प्रदान करे। (सहसा बात पलट कर) चंड भी तो आ रहा था?

लाखासिंह—आ रहा था? कब? मैंने तो उसे नहीं देखा। चंडके विषयमें मैं एक बात कहने वाला था, उसे अभी कह दूं तो अच्छा है। वह अभी अल्हड़........

हंसा—(उनकी बातको बीचमें ही रोक कर, कुछ व्यंग्यसे) तो क्या हुआ! जब राज-काजका कुछ भार आप उसके कन्धोंपर रख देंगे तो उत्तरदायित्वसे उसका अल्हड़पन जाता रहेगा।

लाखासिंह—राज्यका भार मैं उसे नहीं सौंप सकता। उसका अधिकारी तुम्हारा भावी पुत्र है, उसके होने तक यह मेरे पास धरोहर रहेगा।

हंसा—(कृत्रिम आवेशसे) ऐसा न कहिये महाराज, यह न होगा! मेवाड़का सिंहासन जिसका है उसीको वह मुबारिक। मैं यहांपर दूसरोंका अधिकार छीनने नहीं आई हूं। मैं तो आई हूँ संसार को यह दिखाने कि एक राजपूतबाला में रणाग्नि-कुंड की तरह समाज के अग्निकुंडमें भी अपना जीवन, अपना यौवन, अपना सर्वस्व स्वाहा करनेकी कितनी क्षमता रहती है।

लाखासिंह--पर चंडने तो मेवाड़के सिंहासनको स्वयं छोड़नेका ही नहीं

बल्कि उसपर तुम्हारे आत्मजको सहर्ष अभिषिक्त करनेका प्रण किया है । चंड शूर ही नहीं, परले दरजेका हठी भी है। जो बात एक बार मुखसे निकल गई उसे प्राणपणसे भी पाल कर ही दम लेता है।

हंस—बातका धनी होना तो क्षत्रियोंका भूषण है—इसे आप बुरा क्यों मानते हैं !

लाखासिंह—मैंने एसे बुरा कब कहा ! पर प्रत्येक बातका अपना अपना अवसर होता है । बातका बतंगड़ बनाना भी तो कोई बुद्धिमानी नहीं ।

(शस्त्रोंसे सुसज्जित चंड प्रवेश करता है और हंसाको महाराजके पास देखकर रुक जाता है और लौटने लगता है)

लाखासिंह—(चंडको देखकर) आओ बेटा, रुक क्यों गये ? तुम्हारी माता ही तो हैं। उन्हें प्रणाम न करोगे ?

चंड—(पास आकर) क्यों नहीं ? शास्त्रोंमें पितासे शतशः बढ़कर माताको पूज्य माना गया है । (हंसाकी ओर) माताजी, प्रणाम ।

हंसा—सुखी रहो।

लाखासिंह—इसे पहिचाना नहीं ? यही तो चंड है।

हंसा—पहचाना क्यों नहीं, खूब पहचाना है । चन्द्रोदय भी कभी छिपा रहता है।

चंड—हां, छिपा रहता है—बादलोंके आवरणके पीछे ।—(सब हंसने लगते हैं।)

लाखासिंह—कहां जाने की तैयारी है ?

चंड—बहुत देर तक बैठे बैठे मन उकता गया था । सोचा कि मृगयामें ही इसे बहला आऊँ ।

हंसा—क्या इसका आशय यह न हुआ कि इन निरीह प्राणियोंके प्राण भी मनुष्यकी विनोदपूर्तिके लिये हैं ?

चंड—विधाताने जिसे जो कार्य सौंपा है उसे वह पूरा करना ही पड़ता है।

हंसा—(व्यंग्यसे) क्या विधाताने इन अबोध पशुओंको मनुष्यका शिकार बननेको बनाया है !

चंड—मैं तो यही मानता हूँ।

हंसा—तुम्हारी यह भूल है, विधाताकी इस स्वतन्त्र सृष्टिमें हरएक प्राणीको जीवित रहनेका पूरा अधिकार है।

चंड—जो अपनी रक्षा आप नहीं कर सकता, उसे कौन जीवित रहने देगा ? जिसके पास शक्ति उसीका आधिपत्य।

हंसा—(अपने मनमें) 'जिसके पास शक्ति उसीका आधिपत्य !' यदि इसका यही विश्वास है तो यह मेरे भावी अपत्यको सिंहासनपर कैसे टिकने देगा—उसे जीवितही क्यों रहने देगा ! सिंहासन का त्याग केवलमात्र ढोंग था—आवेशप्रेरित एक वचन था जो किसी समय भी आवेशमें तोड़ा जा सकता है। (प्रकाश) तब तो आततायियोंके अत्याचारोंको भी तुम न्यायसंगत मानते हो—जो आघात शत्रुओंद्वारा राजपूतोंपर होरहे हैं, उन्हें भी तुम उचित समझते हो ?

चंड—राजपूतोंमें उन आघातोंको प्रत्याघातोंद्वारा अकुंठित करने की पूर्ण क्षमता है। जिनमें वह क्षमता नहीं वे राजपूत ही नहीं। राजपूत आन और मानके लिये जान देते हैं, पर उन्हें नहीं देते।

हंसा—(क्रोधसे) तुम्हारी राजपूती आन और मानकी परीक्षा भी कभी न कभी हो जायगी।

चंड—(गर्वसे) जब वह दिन आयगा तो मैं अपना सौभाग्य समझूंगा। चंड सदा उस घड़ीकी प्रतीक्षामें रहता है जब उसे आगमें तपाये हुए सोनेकी तरह कुंदन बन कर निकलनेका अवसर मिले।

(क्रोधसे चला जाता है)

हंसा—बड़ा उद्धत है।

लाखासिंह—उद्धत नहीं, आग्रही है।

हंसा—(अपने आप) किसीसे आज तक पाला पड़ा नहीं, तभी तो इतना उद्धत है। हंसासे जब टक्कर होगी तब आटे-दालका भाव याद आजायगा। (ऊपरसे खेद प्रकट करती हुई, लाखासिंहसे) मुझे खेद है कि आवेशमें आकर मैंने उसे नाराज़ कर दिया है।

लाखासिंह—खेदकी कोई बात नहीं, वातावरणही कुछ ऐसा बन गया था।

हंसा—अधिक खेद इस बातका है कि हमारे प्रथम समागममें ही ऐसी घटना हुई है।

लाखासिंह—घबरानेकी कोई बात नहीं। चंडका हृदय दर्पणकी तरह स्वच्छ है, उसमें मलिनता टिकने नहीं पाती। अब चलें।

(चले जाते हैं)

(परदा गिरता है)

चौथा दृश्य

(स्थान—चित्तौड, राजमहलका एक छोटा सा कमरा, हंसा चिन्तानिमग्न सी आती है।)

हंसा—(अपने आप) उन्होंने कहा था—मेरे पास यौवन नहीं, पर यौवनके अभावको मैं प्रेमसे पूरा करूंगा। वे उस अभावको कैसे पूरा करेंगे—कुछ समझमें नहीं आता। जब दो समान हृदयोंकी तारें जुड़ती हैं, तब प्रेमतन्त्री बजती है, तब उसमें से मधुरस्वर निकल सकता है। पर यहां तो दो हृदय ही समान नहीं, एकमें यौवनकी उमंगें हैं, और दूसरेमें बुढ़ापेकी जर्जरता है। एकमें बसन्तकी बहार है और दूसरेमें शिशिर का पतझड़ है। ऐसे दो हृदयोंके मिलनसे प्रेमकी उत्पत्ति कैसे होगी! (कुछ सोचकर) मैं क्या सोच रही हूं! एक हिन्दू-नारीके हृदयमें ऐसे विचारोंका स्फुरणमात्र ही महा-पाप है। पति स्त्रीका आराध्य देव है, उसीका आराधन उसका धर्म है। (फिर चिन्तानिमग्न हो जाती है।) इन विचारोंसे कितना ही पल्ला छुड़ाऊं, पर वे पीछा नहीं छोड़ते। प्रभो, अब तुम्हीं बताओ मेरा क्या कर्तव्य है? (गानेकी आवाज़ आती है) कौन गा रहा है? किसी स्त्रीका स्वर मालूम होता है। कंठ भी बहुत सुरीला है। इसका गायन सुनकर शायद चित्तका विक्षोभ दूर हो जाय। कोई है? (एक दासी प्रवेश करती है।)

दासी—आज्ञा महाराणी जी?

हंसा—ललिता, यह कौन गा रही है?

दासी—एक भिखारिन है महाराणी जी । द्वारपर भिक्षाके लिए खड़ी है। बहुत अच्छा गाती है।

हंसा—उसे भीतर ले आओ । कहना मैं उसका गायन सुनना चाहती हूँ।

दासी—बहुत अच्छा (जाती है)।

हंसा—शायद इसके स्वरकी मधुरता मेरे विक्षुब्ध चित्तको शान्ति प्रदान कर सके।

(दासी भिखारिनको साथ लिये आती है । भिखारिनके वस्त्र गेरुए वर्णके हैं और उसके मस्तकपर भस्मका तिलक है । उसके एक हाथमें करताल और दूसरेमें वीणा है)।

भिखारिन—महाराणी की जय हो।

हंसा—आओ, यहां बैठो। क्या तुम ही द्वारपर गा रही थीं ?

थिखारिन—हाँ, महाराणी जी, मैं ही गा रही थी !

हंसा—तुम्हारा स्वर मुझे बहुत भला लगा है। कोई गाना सुनाओगी क्या ?

भिखारिन—क्यों नहीं। हमारा और काम ही क्या है !

(गाती है)

करो मत इतना सोचविचार।
मानवजन्म कहाँ मिलनको है यह वारंवार !
विधनाने जो रची राह है, चल उस पर, चाहे न चाह है,
अपना मन मत व्यर्थ जला तू, जीना है दिन चार ॥
पिच्छल मग है विषय-भुक्तिका, उधर न पग धर फिसल जायगा,
भटक-भटक कर मृगतृष्णामें अपना जी न गँवा गँवार ॥

मनके लड्डू व्यर्थ न खा तू, गगनमध्य मत भवन बना तू,

तेरा तो बलि-अग्नि-कुंडमें, तिल-तिल जल होगा संसार ॥

भवसमुद्रमें बहु नर आते, डूबते, बहते औ' मर जाते,

कुछ मँझधार ही ग़ोते खाते, थोड़े पहुंचे हैं उस पार ॥

पर, जो पार पहुंच जाते हैं, जगमें अटल कीर्ति पाते हैं,

तेजपुंजके स्तंभ बने वे दिखलाते सबको 'वह पार' ॥

हंसा—(जैसे उन्मत्तताके आवेशमें—अपने आप) घमश्याम, मैंने सुन लिया है, सब कुछ सुन लिया है। मुझे तुम्हारा संदेश—आदेश मिल गया है । जो कुछ तुमने इस भिखारिन—भिखारिन नहीं देवबालाके द्वारा कहला भेजा है उसे ध्यान से सुन लिया है। जिस मार्ग को तुमने आलोकित किया है उसी पर मैं मनको चला रही थी, पर फिर भी कभी न कभी वह फिसल जाता था। अब वह न फिसलेगा—कभी उससे विचलित न होगा, भयंकर तूफानों और भूचालोंमें भी पाषाणकी चट्टानकी तरह कभी न हिलेगा। मैं क्षत्राणी हूं, आत्मबलिदानका पाठ मुझे माताके दूधके साथ मिल चुका है। विभवभोग तो तुच्छ वस्तु है, स्वामीके हितसाधनमें मैं इस नश्वर देहका भी विसर्जन कर सकती हूं । (सामने विस्मित खड़ी भिखारिन को देखकर) तुम अभी खड़ी हो! तुम भिखारिन नहीं हो बहिन, देवांगना हो । स्वर्गसे उतर कर मुझे इस पाप-कालिमासे बचाने आई हो । भिखारिन तुम नहीं, मैं हूं । जिस प्रकाशकी भिक्षा तुमसे मुझे मिली है, वह सदा मेरे जीवनमार्गको आलोकित करता रहेगा।

भिखारिन—(और भी विस्मित हो कर) मेरी समझमें नहीं आता कि बात क्या है। आपकी बातको मैं अब भी समझ नहीं पाई।

हंसा—तुम इसे न समझोगी और समझ कर करोगी भी क्या! मेरी बात थी, मैंने समझ ली। एक बात पूछूं, बताओगी?

भिखारिन—बताऊंगी क्यों न? पूछिये।

हंसा—तुम्हारे माता-पिता कौन हैं?

भिखारिन—यह आप क्यों पूछती हैं?

हंसा—इसलिये कि तुम जन्मकी भिखारिन नहीं मालूम होतीं।

भिखारिन—(एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर इसे न पूछिये महाराणी जो, दिलकी बात दिलके ही गहनतम तलमें ही छिपी रहने दीजिये। भरे हुए घावोंको फिर न ताज़ा कीजिये।

हंसा—अच्छा, रहने दो, न बताओ। मैं यह इसलिए जानना चाहती थी कि शायद तुम्हारे गायनकी तरह तुम्हारे जीवन से भी मुझे कुछ और सान्त्वना मिल जाय।

भिखारिन—तब तो बताऊंगी, अवश्य बताऊंगी। मुझे चाहे कष्ट हो, पर इस विचारसे कि शायद मेरी कष्टगाथासे आपको शांति प्राप्त हो, मैं अपनी रामकहानी अवश्य सुनाऊंगी—सुनिये, मेरे माता-पिता इसी प्रान्तके रहने वाले अच्छे धनी-मानी व्यक्ति थे।

हंसा—(उत्सुकतासे) वे कौन थे? उनके नाम क्या हैं?

भिखारिन—यह न बताऊंगी, इसके बतानेका कुछ लाभ भी नहीं है।

हंसा—क्या वे जीवित हैं?

भिखारिन—यह भी न बताऊँगी।

हंसा—अच्छा, यह भी न बताओ। फिर क्या हुआ?

भिखारिन--उन्होंने मेरा ब्याह अपने समान ही प्रतिष्ठित घराने के एक नवयुवकसे कर दिया।

हंसा--तब तो तुम्हारे माता-पिता बड़े भाग्यवान थे। किसी किसी को ही कन्या के लिए अनुकूल वंश का वर मिलता है।

भिखारिन--मेरे विवाहके पूर्व अवश्य वे भाग्यवान थे, पर विवाहके बाद उनके भाग्य फूट गये।

हंसा--क्यों ?

भिखारिन--ज़रा धैर्यसे सुनती जाइये। विवाहके बाद मेरे चार पांच बरस बड़े आनन्दसे कटे, जो भी सुख किसी युवतीको चाहियें वे सब मुझे प्राप्त थे। परन्तु मेरे सौभाग्यमें एक न्यूनता थी जो उन लोगोंको खटकने लगी, और ज्यों ज्यों समय बढ़ता गया उसके अनुभवसे उन्हें अधिकाधिक कष्ट होने लगा।

हंसा—वह न्यूनता क्या थी ?

भिखारिन--(साश्रु नेत्रोंसे) वह यह थी कि ईश्वरने मेरी गोदको भरा नहीं था। इससे मेरे सास-ससुरको और उन्हें भी इसी बातकी चिन्ता रातदिन रहती थी। उन्होंने कई उपाय किये, औष-धोपचार किया, जादू-टोने किये, पर सब निष्फल। अन्तमें दस-बारह बरसकी प्रतीक्षाके बाद मेरे पतिदेव एक और बधू ले आये।

हंसा--(आखों में आँसू लाकर) हाय री अभागिन ! तुम्हारे पतिने बहुत निष्ठुरता की, क्या उसे तुम्हारे भविष्यका ज़रा भी विचार न हुआ।

भिखारिन--उनका कुछ दोष न था। उनके माता-पिताने ही उन्हें बाधित किया था। आख़िर वे बेचारे भी क्या करते, पौत्रका

मुख देखनेकी लालसा किसे नहीं होती! शास्त्र भी तो यही कहते हैं कि 'निपूता नरक में जाता है।'

हंसा—क्या तुमने पति को रोका नहीं?

भिखारिन—नहीं, उनके सुखमें बाधा कैसे पहुँचा सकती थी! ईश्वरकी कृपासे विवाहके एक वर्ष बाद ही उनके एक पुत्र हुआ।

हंसा—तब तो अच्छा हुआ, उनका प्रयास सफल हुआ।

भिखारिन—इस सफलताके कारण मेरे दिनोंने भी कुछ पलटा खाया और घरमें मेरा कुछ आदर भी होने लगा।

हंसा—यह बात तो अनोखी है!

भिखारिन—हाँ, कुछ-कुछ अनोखी मालूम होती है, पर बात यह थी कि मुझे बालकसे कुछ मोहसा हो गया था। अतः उसे खिलाने-पिलाने का काम मैंने अपने ऊपर ले लिया था। इससे मेरी सौत मुझसे सन्तुष्ट रहती थी। इसी तरह कई वर्ष और गुज़र गये। एक दिन अकस्मात् पतिदेव को हृदयमें पीड़ा हुई और दो तीन घंटोंके कष्टके बाद ही वे चल बसे।

हंसा—अब वे संसारमें नहीं हैं क्या?

भिखारिन—नहीं, उनकी मृत्युके बाद मेरे दुर्दिन फिर आये। मेरा—नहीं, मेरी सौतका पुत्र जवान हो गया था—अतः उसे मेरी देखभाल की आवश्यकता न रही, साथ ही मेरी सौतको भी किसी धात्रीकी आवश्यकता न रही, अतः उन दोनोंने मुझे कष्ट देना शुरू किया। भोजनके इतने कौर नहीं मिलते थे जितने उनके साथ जले-कटे दुर्वचन सुनने पड़ते थे।

हंसा—जिसके साथ तुमने ऐसा व्यवहार किया—पाला-पोसा, इतना बड़ा किया, उसका ऐसा दुर्व्यवहार!

भिखारिन—संसारकी यही रीति है। एक दिन किसी बहानेसे मेरे पालित पुत्रने मुझे घरसे निकाल दिया। तबसे मैं भिखारिन बनकर दर-दर भीख मांग रही हूं।

हंसा—(दीर्घ निश्वास छोड़ कर) तब तो तू भी मेरी तरह मानवी अत्याचारकी शिकार है। बहन, आजसे तू भिखारिन नहीं, मेरी सहचरी है। अत: मेरे ही पास रहो। मेरी स्थिति भी तुम्हारे जैसी है-मेरे भी एक... ..अच्छा, जाने दो इस बात को।

भिखारिन—मैं किसी एक ठिकाने पर रह नहीं सकती। महाराणीजी, मैंने अपने जीवन के जो लक्ष्य बना रक्खे हैं उन्हें ही पूरा करनेको आजीवन घूमती फिरूंगी।

हंसा—वे क्या हैं ?

भिखारिन—एक यह कि मनुष्यके अत्याचारोंसे पीड़ित अबलाओंकी आत्माओं को शान्ति प्रदान करती रहूँ।

हंसा—तुमने यह कर्तव्य तो आज अच्छी तरह पूरा किया है, मेरी आत्माको जो सान्त्वना आज तुमने दी है उसके लिए मैं तुम्हारी सदा आभारी रहूंगी।

भिखारिन—यदि आपको कुछ सान्त्वना मिली है तो इससे मेरा एक लक्ष्य कुछ सफल हुआ है। अब एक और काम रह गया है—वह यह है कि मैं विमाताके एक एक सुपुत्रकी खोजमें हूं, जो विमाताकी भी अपनी माताकी तरह सेवा कर रहा हो। जिस दिन मैं उसे देखूंगी उस दिन मेरे चित्त को शान्ति प्राप्त होगी और मेरा दूसरा जीवनलक्ष्य भी पूरा होगा। उस दिन मैं समझूंगी कि सब सपत्नीपुत्र एक जैसे नहीं होते। अब मुझे जाने की आज्ञा दीजिये।

हंसा—फिर कभी मिलोगी ?

भिखारिन—अवश्य, जब कभी मिलने की आवश्यकता समझूंगी स्वयं मिलूंगी।

(जाती है)

हंसा—(दीर्घ निश्वास छोड़कर) यह है मानव-समाज !

(जाती है)

(परदा उठता है ।)

पांचवां दृश्य

स्थान—मेवाड़ । राजमहलका खुला आंगन । आंगनमें अनेक प्रकारके पत्तों और फल-फूलोंसे सुसज्जित एक वेदी बनी है । उसमें दो सुन्दर चौकियां धरी हैं । एक चौकी पर महाराज लाखासिंह बैठे हैं। उनके वाम पार्श्वमें दूसरी चौकीपर महारानी हंसा बैठी हैं । महाराणीकी गोदमें एक सुन्दर नवजात शिशु है । महाराणीके पीछे वाम पार्श्वमें राजगृहकी दूसरी महिलायें और महाराजके पास कुमार चंड और कुछ उनके निजी सम्बन्धी और उच्च राजकर्मचारी बैठे हैं ।)

म० लाखासिंह—क्या पुरोहित जी नहीं आये ?

एक कर्मचारी—(हाथ जोड़कर) अभी आते ही होंगे धर्मावतार ।

लाखासिंह—नामकरण-संस्कार का समय कहीं टल न जाय ।

दूसरा कर्मचारी—उस मुहूर्त्त में अभी एक पहर है ।

(दरबान आता है)

दरबान—(झुककर) महाराज की जय हो !

लाखासिंह--क्या बात है दुर्गासिंह ?

दरबान—महाराज, द्वार पर दो मनुष्य खड़े हैं, कहते हैं कि हम मारवाड़से आये हैं।

लाखासिंह--मारवाड़से आये हैं ? उन्हें सादर ले आओ।

दरबान—जो आज्ञा (जाता है)।

एक कर्मचारी—प्रतीत होता है कि महाराज रणमल्लके आदमी हैं।

लाखासिंह--उन्हींके होंगे। हम भी उन्हींकी प्रतीक्षामें हैं, इस अवसर पर उनका यहां होना आवश्यक है।

(दरबान दोनोंको लेकर आता है।)

लाखासिंह--(उनका स्वागत करता हुआ) आइये पुरोहित जी ! (दूसरे पुरुष को देखकर) आप हैं मदनसिंह जी ! आज तो बड़े सौभाग्यकी बात है जो आपके दर्शन हुए। कहिये महाराज सकुशल तो हैं ?

पुरोहित—अन्नदाता, आप लोगोंकी कृपासे मारवाड़में सब प्रकारकी कुशलता है। मेवाड़-राज्यके उत्तराधिकारीके (चंड कुछ मुस्करा देता है) जन्मका समाचार सुन कर महाराज रणमल्लको अपार हर्ष हुआ है और महाराणी जी तो फूले अंग नहीं समातीं !

मदनसिंह--उसी दिनसे राज्यके प्रत्येक नगर और गाँवमें, विशेषतः राजधानीमें उत्सव मनाये जारहे हैं।

एक कर्मचारी—उनका उत्सव मनाना उचित है। दौहित्र-लाभसे किसे हर्ष नहीं होता ! (पुरोहित उठकर बालकको हंसाकी गोदसे उठा लेता है)।

पुरोहित--कैसा सुन्दर बालक है ! हंसीको तो मानो जन्मके साथ लेकर आया है। महाराज, बालकके मस्तककी रेखाओंसे

प्रतीत होता है कि सीसोदिया-कुलके नामको उज्ज्वल करेगा। (चंडकी ओर संकेत कर) भैयाको देखकर हंस रहा है! (कौतुकवश बालक दोनों हाथ चंडकी ओर पसारता है।) लो, तुम्हारी ओर हाथ पसार रहा है। तुमसे कुछ मांग रहा है।

चंड—मैं तो इसके जन्मसे पूर्व ही इसे अपना सब कुछ दे चुका हूं। और भी जो आप कहें देने को उद्यत हूं।

पुरोहित—ठीक है। जब आपने राजपाट ही दे दिया है तो और देने को रह ही क्या गया है ?

(राजपुरोहित आता है)

लाखासिंह—पुरोहित जी, आप कुछ देर करके आये हैं।

पुरोहित—देर नहीं हुई धर्मावतार। अभी तो मुहूर्तमें लगभग आधा पहर है। (रणमल्लके पुरोहितको देखकर) अहा ! आप हैं ! आप कब आये महाराज ? (मदनसिंहको देखकर) मदनसिंहजी भी साथ हैं ! (लाखासिंहको) महाराज, नारियल लेकर भी ये ही दोनों आये थे। कैसे शुभ मुहूर्तमें आये थे ! एक वर्षके अन्दरही यह सुफल प्राप्त हुआ है।

मदनसिंह—महाराज, महाराणी हंसाके विवाहने मेवाड़ और मारवाड़ के मध्य में जो संबंध स्थापित किया था उसे कुमारके जन्मने घनिष्ठ कर दिया है। ईश्वर इस सम्बन्ध को चिरस्थायी करे।

लाखासिंह—हम लोगोंकी भी यही कामना है। (अपने पुरोहितसे) महाराज, संस्कार का कार्य आरम्भ करें।

राजपुरोहित—धर्मावतार, और कार्य तो आज प्रातः ही होचुके थे। यह मुहूर्त केवल नामकरणका है।

लाखासिंह—आपने कोई नाम सोचा है ?

राजपुरोहित—सोच रक्खा है महाराज। कुमारका नाम मुकुल-
सिंह होगा।

लाखासिंह—नाम तो आपने बहुत अच्छा रक्खा है।

मारवाड़ पुरोहित—ठीक है महाराज, नाम बहुत अच्छा है। मुकुलका अर्थ पृथ्वी है—अतः इस नामका अर्थ पृथ्वीसिंह है। ईश्वर इन्हें इस पृथ्वी पर सिंहके समान शौर्य दिखाने की शक्ति दे।

सब—तथास्तु।

रा० पु०—यह समय है पुरोहितजी, कुमारको भूषण-वस्त्र पहनानेका।

मदनसिंह—ये लीजिये (सुन्दर वस्त्रोंका एक जोड़ा और कुछ भूषण निकालकर देता है। राजपुरोहित उन्हें कुमारको पहनाता है।)

मा० पु०—(राजपुरोहितसे) अब आप कुमारको तिलक करें। (राजपुरोहित कुमारके माथेपर तिलक करता है।) (चंडसे) भैया चंड, आप भी कुमार के मस्तक पर तिलक करें।

रा० पु०—इस समय तिलक करने का अधिकार पुरोहितका ही है।

मा० पु०—मैं चाहता हूं कि भैया चंडके हाथोंसे कुमारको राज-सिंहासन पर बैठाने का उपक्रम भी इसी शुभ मुहूर्तमें होजाय। (सब लोग एक दूसरेका मुख देखने लगते हैं। चंड तुरन्त उठकर कुमारके मस्तक पर तिलक कर देता है।)

सब उपस्थित जन--(एक स्वरसे) प्रणवीर चंड की जय!

लाखासिंह—(सब लोगोंसे) आप लोगोंकी कृपासे कुमारके नाम-करणका—

मा० पु०--(धीरेसे)और अभिषेकका भी—

लाखासिंह--और अभिषेकका भी कार्य निर्विघ्न सुसम्पन्न होगया है।

चंड--(उठकर) हम सब प्रजाजन, ईश्वरको साक्षी मानकर यह प्रतिज्ञा करते हैं कि जिस प्रकार हम लोग आज तक महा-

राजके अनुचर और भक्त रहे हैं उसी प्रकार आगेको भी अपने भावी महाराज मुकुलसिंह के भी भक्त बने रहेंगे।

मा० पु०—धन्य हो चंड—त्याग हो तो ऐसा हो। तुम इस युगके भीष्म हो।

(महाराज खड़े हो जाते हैं। पश्चात् महाराणी और सब लोग खड़े हो जाते हैं। पहले महाराज के साथ महराणी जाती हैं। पीछे दूसरे लोग एक एक कर चले जाते हैं। चंडको एक राजकर्मचारी ठहर जानेको संकेत करता है। चंड और वह कर्मचारी पीछे रह जाते हैं, शेष सब लोग चले जाते हैं।)

चंड—क्या कुछ कहना है रामसिंह ?

रामसिंह—बहुत कुछ कहना है कुमार! आपने यह क्या किया है—अपने पैरों पर आपही कुठाराघात किया है!

चंड—मैं तुम्हारी बात नहीं समझ पाया। मैंने क्या किया है ?

रामसिंह—अभी किया ही कुछ नहीं! अपना राज्य, अपना सर्वस्व दूसरोंके हवाले कर दिया है, दूसरा भी और कोई नहीं, वैमात्रेय भाई!

चंड—(हंसकर) इस बात पर नाराज़ हो ? अब मैं समझा। भैया रामसिंह, जिस पिताका यह राज्य है उसका जैसा मैं पुत्र हूं वैसा ही मुकुल भी तो पुत्र है।

रामसिंह—पर कुलमर्यादाके अनुसार राज्यका अधिकारी राजाका बड़ा पुत्र होता है।

चंड—तुम्हें याद होगा रामसिंह, मैंने भरी सभामें पिताजी से यह प्रण किया था कि मुझे अपना अधिकार विमाताके पुत्रको देने में ज़रा भी हिचकिचाहट न होगी।

रामसिंह—क्या सभी प्रण पूरे किये जाते हैं ?

चंड—तुम्हारे मुखसे यह मैं सुन रहा हूं रामसिंह ! मुझे मालूम न था कि तुम्हारे ऐसे जघन्य विचार हैं। तुम्हें स्मरण नहीं कि मैंने सभामें कहा था:—

बापारावलका कुलज चंड वचन छोड़े नहीं।

पग आगे बढ़ गया जो पुनः उसे मोड़े नहीं ॥

रामसिंह—(सविनय) क्षमा करो कुमार, मैंने अब तक आपके वास्तविक रूपको पहचाना न था। मैं अभी तक आपको मनुष्यही समझता रहा, पर आप मनुष्य नहीं, देवता हैं, देवताओंमें भी क्रोध, मोह होते हैं—आप उनसे भी ऊपर हैं। पर एक बात मैं और पूछता हूं। महाराणी हंसा आप की विमाता हैं। उनके साथ ऐसा व्यवहार ! संसारके इतिहासमें क्या किसी विमाताने भीं सपत्नीपुत्र से भला सुलूक किया है ?

चंड--संसार एक महान सागर है भैया। इसमें अमृत भी है और गरल भी। सुरुचि भी विमाता थी और सुमित्रा भी। फिर भी दोनोंमें कितना अन्तर था ! एकने सपत्नीपुत्रको नगरसे निकलवा दिया और दूसरीने नगर से निकाले हुए सपत्नीपुत्रके साथ अपने पुत्रको भी चौदह बरसके लिये निर्वासन दे दिया। (रामसिंहका चेहरा उतर जाता है और वह विचारमग्न हो जाता है।)

रामसिंह--कुमार, मैंने भी अपनी विमाता के साथ घोर अन्याय किया है। केवल यही विचार कर कि वह विमाता है और उससे अहितकी संभावना हो सकती है--उसे घरसे निकाल दिया है। पर आपकी बातोंने मेरी आँखें खोलदी हैं--अब मैं अनुतापकी आगमें जलने लग गया हूं।

चंड—तुमने घोर अन्याय किया है, पर अब क्या हो सकता है !

रामसिंह—इसका मैं प्रायश्चित करूंगा। (जानेको उद्यत होता है।)

चंड—रामसिंह, ठहरो मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ।

रामसिंह—यह न होगा कुमार, तुम देवता हो और मैं दानव हूँ। देवता और दानव कभी सहचर नहीं हो सकते।

चंड—रामसिंह, पश्चात्तापकी आगमें सभी पाप भस्म होजाते हैं। तुम चाहे मुझे छोड़ दो, पर मैं तुम्हें न छोड़ूंगा। हम दोनों एकही नावमें बैठकर संसारसागरकी यात्रा करेंगे।

(दोनों चले जाते हैं।)

यवनिका-पतन

तृतीय अंक

पहला दृश्य

(स्थान—मेवाड़ । राजभवनका एक छोटा सा कमरा । हंसा और महाराणा बातें करते करते आते हैं ।)

हंसा—आपने दृढ़ निश्चय कर लिया है ?

महाराणा—मेरा निश्चय दृढ़ है । गयातीर्थपर होते हुए अत्याचारों की करुणाकथाको सुन-सुन-कर अब नहीं रहा जाता । आखिर क्षत्रिय हूँ—राजपूत हूं, कहां तक उन्हें सुन-सुन कर अकर्मण्य बैठा रहूंगा । (बैठ जाता है, हंसा भी पासहीके दूसरे आसन पर बैठ जाती है ।)

हंसा—आपने अपनी अवस्थाका भी कुछ विचार किया है !

महाराणा—अब अवस्था इतनी हो गई है कि इसका विचार न करना ही अच्छा है । यदि तुम्हारे पुत्रमुख देखनेकी लालसा न होती तो मैंने कबकी वानप्रस्थदीक्षा ली होती ! खैर, उस यात्राका समय तो चला गया, परन्तु इसको हाथसे न जाने दूंगा । इस यात्रामें लाभ ही लाभ है । यदि अत्याचारियों पर विजय पा गया तो गया-तीर्थकी पवित्रताको अक्षुण्ण रख सकूंगा और यदि मारा गया तो गया में मरनेसे मुक्ति पाऊंगा ।

हंसा—क्षत्राणी होकर आपको ऐसे शुभ कर्मसे कैसे रोकूं, पर मुकुल अभी अबोध शिशु है, रह रह कर इसका विचार आता है ।

महाराणा—चंडके होते हुए मुकुलको किसीका भय न होगा ।

हंसा—पर चंड शक्तिशाली है और मुकुल अबोध शिशु ।

महाराणा—इससे तुम्हारा अभिप्राय क्या है ?

हंसा—चंडका उस दिनका यह वचन 'कि जिसकी शक्ति उसीका आधिपत्य' जब कभी ध्यानमें आता है तो.. ......

महाराणा—तुम्हारी यह कल्पना निर्मूल है।

हंसा—क्या चंड मुकुलका वैमात्रेय भाई नहीं है?

महाराणा—क्या भरत रामका वैमात्रेय भाई नहीं था!

हंसा—सभी भाई भरत नहीं होते।

महाराणा—सभी भाई चंड भी नहीं होते। मुझे खेद है हंसा कि तुमने अब तक चंडको नहीं पहचाना।

हंसा—पहचाना है तभी तो संदेह हुआ है।

महाराणा—तुम्हारा यह संदेह भी मैं मिटा देता हूं। कोई है?

(द्वारपाल आता है)

द्वारपाल—आज्ञा महाराज?

महाराणा—चंड और रघु—दोनोंको बुला लाओ।

द्वारपाल—जो आज्ञा। (जाता है)

महाराणा—बहुत अच्छा हुआ कि तुम्हारी मनोवृत्तिका अभी पता लग गया है। नहीं तो, कह नहीं सकता कि मेरे पीछे इसका क्या परिणाम निकलता।

(चंड और रघु आते हैं और पिता और माताको प्रणाम कर चौकियोंपर बैठ जाते हैं।)

महाराणा—चंड बेटा, तुम्हें पता लग गया होगा कि मेरा विचार तीर्थयात्राका है?

चंडा—आज ही इसका पता लगा है। मैंने सुना है कि आप गया पर होते हुए आततायियोंके उपद्रवों को शान्त करने जा रहे हैं।

महाराणा—हाँ, यह भी एक लक्ष्य है।

चंड—इसके लिए आपको कष्ट करनेकी क्या आवश्यकता थी! क्या आपको इस सेवकके बाहुबल पर कुछ संदेह है ?

महाराणा—यह बात नहीं बेटा। मेरा विचार देरसे सांसारिक बन्धनोंसे मुक्ति पाकर तीर्थयात्रा करनेका रहा है। गया पर आततायियोंके उपद्रवोंकी बातें सुनकर वह संकल्प अब दृढ़-तर होगया है। इस समय वहां जाना एक पंथ दो काज होंगे।

चंड—आपका यह संकल्प शुभ है। हमें क्या आज्ञा है ?

महाराणा—तुम दोनों भाइयोंको इसलिए बुलाया है कि मेरी अनुपस्थितिमें राजकाज कैसे चलाया जाय-इसपर विचार करें।

चंड—मैं आज्ञा-पालन करनेको सदा तैयार हूँ।

महाराणा—मैं चाहता हूं बेटा, कि अपने हाथों से तुम्हें सिंहासन पर (हंसा चौंक उठती है, महाराणा उसे आँखका संकेत करते हैं।) बैठाकर मनकी यह चिरवाञ्छा भी पूर्ण करलूं। संभव है कि जीवित न लौट सकूं !

चंड—पिताजी, आपको मेरे प्रणपर कुछ भ्रम हुआ है जो ऐसा कह रहे हैं ?

महाराणा—मुकुल अभी बच्चा है। वह राज्यकार्य कैसे कर सकेगा ! इसलिए तुम्हें ही राज्यका भार अपने कन्धोंपर लेना चाहिये।

चंड—पिताजी, मुकुलके मस्तकपर तिलक लगा कर उसका अभिषेक अपने हाथोंसे कर चुका हूं। अब मेवाड़का अधिपति वही है।

हंसा—वह राजकाज कैसे चलायेगा ?

चंड—आप उसकी सहायता कर सकती हैं।

हंसा - पुरुषोंके रहते यह काम अबलाओंका नहीं है! क्या तुम अपने भाईकी सहायता न करोगे ?

चंड—यदि माताकी आज्ञा होगी, तो उसे पालनेको चंड हाज़िर है।

महाराणा—तो मैं तुम्हारी ओरसे निश्चिन्त रहूं ?

चंड—चंडकी नसोंमें सीसोदियोंका रक्त है, वह जो कहेगा वही करेगा।

महाराणा—रघु, मुकुलको अभिषिक्त करनेमें तुम्हारा क्या विचार है ?

रघु—आपके बाद राज्य भैयाका है। यदि इन्होंने वह मुकुलको दे दिया है तो इसमें मुझे क्या आपत्ति हो सकती है !

महाराणा—तो अब मैं तुम दोनोंकी ओरसे निश्चिन्त हूं। अब मेरी आयुके शेष दिन भगवानकी भक्तिमें शान्तिपूर्वक कट सकेंगे।

चंड—मुझे जानेकी अनुज्ञा है ?

महाराणा—चलो हमभी चलते हैं। यात्राकी तैयारी भी तो करनी है।

(सब जाते हैं)

परदा उठता है।

दूसरा दृश्य

(स्थान—मेवाड़, राजमहलका एक विशाल कमरा। उसमें कुछ चौकियां रक्खी हैं, एक चौकी पर राजमन्त्री बैठे हैं और दूसरी चौकीके पीछे एक रेशमी परदा लटक रहा है। परदेकी आड़में महाराणी हंसा बैठी है। इनके अतिरिक्त कुछ और चौकियां भी धरी हैं।)

हंसा—वे सब काम हो गये हैं न मन्त्री जी ?

मन्त्री—सबके सब आपकी आज्ञानुसार यथावत् होगये हैं।

हंसा—इस वर्ष वर्षा न होनेसे देहातमें कुछ दुर्भिक्षके लक्षण दिखाई देते हैं। इसका भी कुछ प्रबन्ध करना होगा।

मन्त्री—कुमार चंडने इसका प्रबन्ध पहलेसे ही कर रक्खा है। उन्होंने इतना अनाज इकट्ठा करा रक्खा है कि दीन और अनाथोंको सालभर बेदाम दिया जा सकता है।

हंसा—यह प्रबन्ध तो चंडने बहुत अच्छा कर दिया है। महाराणाके चले जानेसे प्रजाजनोंमें जो कुछ बेचैनीसी होगई थी, वह अभी कम हुई है कि नहीं ?

मन्त्री—कुछ बेचैनी अवश्य हुई थी, पर चंडजीके सुव्यवहारसे वे इतने सन्तुष्ट हैं कि सब पुरानी बातोंको भूल गये हैं।

हंसा—यह भी अच्छा हुआ। मुझे आशा है कि मुकुलके वयस्क होने तक चंडके सुप्रबन्धसे मेवाड़में पूर्ण शान्ति रहेगी।

(अकस्मात् चंड और उसके साथ एक कर्मचारीका प्रवेश। चंडका चेहरा उतरा हुआ है। आँखोंमें आँसू हैं। उसे देखकर मन्त्री खड़ा होकर अभिवादन करता है।)

मन्त्री—(चंडको देखकर) क्या बात है भैया ? तुम्हारी आँखें आँसुओंसे डबडबा रही हैं ?

चंड—माताजी कहां हैं ?

हंसा—(परदेके पीछेसे) मैं यहां हूँ बेटा। क्या बात है ?

चंड—माताजी, अनर्थ होगया है ! पिताजी.........

हंसा—(सहसा परदेसे बाहर निकलकर) क्या महाराजको कुछ विपत्ति आई है ?

चंड—उन्होंने वीरगति पाई है।

हंसा—हा दैव ! (उसके मुंहसे चीख़ निकल जाती है और पछाड़ खाकर भूमिपर गिर पड़ती है।)

चंड—(पास खड़े कर्मचारीसे) दीपसिंह, शीघ्र वैद्यजीको बुला लाओ।

मन्त्री—वैद्यको बुलानेकी आवश्यकता नहीं, अभी होशमें आ जायेंगी।

(रानी कुछ होशमें आती है)

हंसा—(अर्धसंज्ञ अवस्थामें) चंड, महाराजने किस तरह वीर-गति पाई है ?

चंड—माताजी, महाराजने वहां पहुंचते ही स्वाभाविक वीरतासे गयाको शत्रुओंसे खाली तो कर दिया, पर उनकी संख्या अधिक होनेसे महाराजके शरीर पर कई चोटें आईं।

हंसा—फिर !

चंड—उन्हीं चोटोंके कारण कुछ दिन बीमार रहकर अन्तमें स्वर्ग सिधार गये।

हंसा—हा ! मैं कैसी अभागिन हूँ ! अन्त समयमें भी उनकी सेवा न कर सकी। (रोती है) बेटा, तीर्थयात्रा में तो मैं उनका साथ न दे सकी पर इस महाप्रयाणमें मैं उनसे अलग नहीं रह सकती। देखो (आकाशकी ओर निर्देशकर) वे मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

मन्त्री—(आर्तस्वरमें) यह न होगा महारानीजी, वहांसे यहां आपकी आवश्यकता अधिक है।

हंसा—मुझे स्त्रीधर्म पालन करनेसे न रोको मन्त्रीजी।

मन्त्री—मातृधर्मपालन करना भी तो आपका कर्तव्य है। मुकुलको अभी आपकी बहुत आवश्यकता है।

हंसा—उसे मैंने चंडके सुपुर्द किया हुआ है।

चंड—पुत्रको और विशेषतः अल्पवयस्क पुत्रको विपत्तियोंके प्रखर आघातोंसे बचानेकी जितनी क्षमता मातृस्नेहकी ढालमें है उतनी किसी भी और में नहीं है।

मन्त्री—मुकुल महाराजकी धरोहर है। यदि आप इस समय उसकी रक्षा न करेंगी तो स्वर्गस्थित महाराजकी आत्माको कष्ट होगा।

(नेपथ्यसे गानेकी आवाज़ आती है।)

हंसा—यह आवाज़ किसकी है ?

मन्त्री—वही पगली भिखारिन है,जो घर-घर भीख मांगती फिरती है।

(गानेकी आवाज़ समीपतर आती जाती है । हंसा तन्मय होकर उसे सुनती है।)

मन्त्री—यदि आपकी इच्छा हो तो भिखारिनको भीतर ही न बुला लिया जाय ?

हंसा—यही ठीक होगा।

(मन्त्री दीपसिंहको उसे बुला लानेको भेजता है।)

हंसा—इसने पहलेभी मधुर गायनसे मेरी अन्तरात्माको तृप्त किया था। शायद अब भी.........

(दीपसिंहके साथ भिखारिन गाती-गाती आती है।)

भिखारिन—खेवट, जीवटको मत हार ॥

सागरमें तूफान मचा है,
गगनमध्य घनघोर घटा है,
बरस रहा जल मूसलधार,

आँधीका है वेग अपार ।

सूझ रहा नहिं पारावार ।।

खेवट, जीवट............

तुझको तो तटपर जाना है,

यात्रिवर्गको पहुंचाना है ।

फिर क्यों तर्क-वितर्कमग्न हो

ठहर गया तू है मँझधार,

भैया, यहीं न लंगर डार ।

खेवट, जीवट............।।

मंज़िल दूर अभी है तेरी,

समय नहीं, न करो अब देरी ।

इधर उधर मत झाँको नाविक

नैया डूबेगी मँझधार ।

न फिर होगा तेरा उद्धार ।।

खेवट, जीवट............।।

हंसा—(अपने आप) सागरमें तूफान मचा हो, जल मूसलधार बरस रहा हो, पारावार न सूझ रहा हो फिरभी खेवटका कर्तव्य है कि यात्रिवर्गको किनारे पहुँचाकर ही दम ले। (कुछ ठहरकर, चिन्तायुक्त अवस्थामें) मैंने जिसे संसारयात्राका मार्ग दिखाया है, उसे मंज़िल तक पहुंचाना क्या मेरा कर्तव्य नहीं है ? अवश्य है, मुकुल का लालन-पालन मेरा

प्रथम कर्तव्य है। (भिखारिनसे) बहन, एक बार और तुमने संदेहसागर में डूबती हुई मुझे बचाया है। एक बार फिर मेरी विकट समस्याको हल किया है।

(रामसिंह आता है)

(उसे देखते ही भिखारिन तुरंत भाग जाती है।)

रामसिंह—(चकितसा) मुझे देखते ही यह व्याधके भयसे मृगी की तरह क्यों भाग गई है !

मन्त्री—क्या तुम इसे जानते हो रामसिंह ?

रामसिंह—बिल्कुल नहीं । न मैंने इसे पहले कभी देखा है और न अब ही देख पाया हूं।

चंड—यही तो इसका पागलपन है ।

हंसा—यह पगली नहीं।

चंड—आप यह कैसे जानती हैं ?

हंसा—मैं इसके जीवनकी करुणाकथाको कुछ जानती हूं। इसका विवाह तो एक प्रतिष्ठित कुलमें हुआ था पर भाग्यने इसका साथ नहीं दिया। क्योंकि लाख यत्न करने परभी इसके कोई सन्तान न हुई। लाचार होकर इसके पतिको दूसरा विवाह करना पड़ा।

रामसिंह—(असाधारण उत्सुकतासे) फिर !

हंसा—फिर उस विवाहसे इसकी सौतके एक लड़का हुआ। उस लड़के को इसीने पाल-पोस कर बड़ा किया।

चंड—(विस्मयसे) सौतके पुत्रको !

हंसा—हाँ, सौतके पुत्रको। (चंडकी ओर रहस्यपूर्ण दृष्टिसे देखकर) सौतके पुत्रका यदि वैमात्रेय भाईसे स्नेह विस्मयजनक नहीं समझा गया तो विमातासे पुत्रका पालन विस्मयजनक क्यों है !

रामसिंह—(उनकी बातपर ध्यान न देकर) फिर !

हंसा—यहींसे इसके जीवनकी करुणगाथा शुरू होती है। जिस पुत्रका इसने जी जानसे पालन किया था, वही बड़ा होकर कृतघ्न बना, बेचारीको घरसे निकाल दिया गया। तबसे वह दर-दर भीख मांगती फिरती है। (रामसिंहके चेहरेका रंग उतर जाता है)

चंड—(रामसिंहको देखकर) रामसिंह,तुम्हें क्या होगया है ? बीमार तो नहीं हो गये ?

रामसिंह—हाँ, बीमार होगया हूं। हृदयकी एक बीमारीको मैं कबसे हृदयमें ही छिपाये रहा था, किन्तु अब वह तुरन्त सारे शरीरमें फैल गई है, अब मुझसे यहां खड़ा नहीं रहा जाता।

चंड—तो चलो। (अपने आप) कहीं यही तो इसकी......। दो समान घटनायें भी हो सकती हैं। शायद आपबीती घटना को सुनकर इसके हृदयका घाव फिर ताज़ा होगया है।

(दोनों जाते हैं)

मन्त्री—महाराणीजी, महाराणाकी मृत्युसे निराशा का जो अन्धकार छा गया था उसे आपने आशाविद्युत्की एक रेखासे पुनः आलोकित कर दिया है।

हंसा—इसका श्रेय भिखारिन को है।

मन्त्री—मुझे और क्या की आज्ञा है ?

हंसा—एक बात रह गई है, उसे करना होगा।

महाराजकी मृत्युका समाचार मंडोरमें भी भेज दीजिये।

मन्त्री—बहुत अच्छा (मन्त्री बाहर जाता है और हंसा महलमें चली जाती है)

(परदा गिरता है।)

———

तीसरा दृश्य।

(**स्थान**—एक निर्जन पथ। भिखारिन आती है और एक वृक्षके पीछे अपने आपको छिपाये खड़ी हो जाती है। उसकी आकृतिसे मालूम होता है कि वह किसी कारणसे भीत है।)

भिखारिन—(अपने आप) क्या वह मेरा पीछा तो नहीं कर रहा! (सामने देखकर) वही तो है। (चीख़ मारकर वृक्षके तनेसे लिपट जाती है) नहीं नहीं, मैं तुम्हारे साथ न जाऊंगीं, यहीं जान देदूंगी, पर न जाऊंगी। (ध्यानसे देखकर) कहां गया वह? (सामने देखकर) कोई नहीं है। (फिर आंखों को विस्फारित कर देखती है।) अरे! यह तो एक पौधा खड़ा है, मुझे भ्रम हुआ था। (किसीके पावों की आहट सुनाई देती है) वह आ रहा है, मेरा पीछा कर रहा है। (सामनेसे एक गाय आती दिखाई देती है) (कुछ ठहर कर) यह तो गाय है। यदि उसने मुझे पहचान लिया है, तो अवश्य मुझे किसी न किसी तरह खोज लेगा और यहाँ भी न रहने देगा। उसे शायद यह ख्याल न हो जाय कि मेरे यहां रहनेसे उसकी करतूतों का भांडा फूट जायगा। (फिर सोचती है) पर वह राजमहलमें क्या कर रहा था? वहीं से तो निकला था, मैंने अपनी आँखों से देखा था। कहीं अपनी बुराइयोंका जाल वहां भी तो नहीं फैला रहा! भाई भाई में फूट का बीज तो नहीं बो रहा! उससे सब कुछ संभाव्य है। मुझे महारायी को सचेत कर देना चाहिये।

(जाती है)

(सहसा रामसिंहका प्रवेश)

रामसिंह—(अपने आप) खोजते-खोजते मैं थक गया हूं, पर उसका अब तकभी कुछ पता नहीं चला। मुझे देखतेही कैसी सहम गई थी ! मैं कैसा निष्ठुर हूं, पापी हूँ। स्नेहालिंगन के लिए फैलाये हुए हाथोंको मैंने तोड़ डाला, मातृस्नेहसे आर्द्रित हृदय को विदीर्ण कर दिया। मेरे जैसा भाग्यहीन भी कोई होगा ! कितना अन्तर है—कुमारमें और मुझमें कितना अन्तर है ! कहां वह, जो वैमात्रेय भाई पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर चुका है और कहां मैं, जिसने माताको—उस माताको जिसने गर्भसे जन्म न देकर भी मातृधर्मका पालन किया है, स्निग्ध गोदका आश्रय देकर इतना बड़ा किया है—धिक्कार कर घर से निकाल दिया है। मैं कितना जघन्य हूं ! मुझे तो रौरवमें भी स्थान न मिल सकेगा। (कुछ ठहरकर) उसने मुझे राजमन्दिर में आते देखा था। कहीं उसने फिर जाकर महाराणीको सब कुछ कह दिया तो अनर्थ हो जायगा। यह कलंकित मुख लिये उनके सामने कैसे जाऊंगा ! पर वह ऐसा न करेगी, मुझे पूर्ण विश्वास है कि न करेगी। जो हाथ वृक्ष लगाता है, चाहे वह विषवृक्ष ही हो, उसे वह स्वयं कभी नहीं काटता। वह तो फिर माता है। पुत्र कुपुत्र हो सकता है, माता कुमाता नहीं होती। जब तक मैं अपने अपराध उनसे क्षमा न करवा लूंगा, तब तक मुझे चैन न होगा। (जाता है)

(चंड आता है)

चंड—अभी तो यहीं था। फिर न मालूम वह कहां गया ! उस घटनाके दिनसे तो दिनको उसे आराम नहीं, रातको नींद

नहीं। विक्षिप्तसी अवस्थामें ही प्रलाप करता हुआ घंटों गुज़ार देता है। कहीं आत्मघात न कर बैठे! यही एक मेरा सबसे विश्वास्ततम साथी है अतः इसके बचावका कोई न कोई उपाय करना ही होगा।

(चला जाता है)

(परदा उठता है ।

— ——— —

चौथा दृश्य

(स्थान—मेवाड़, राजप्रासादका एक कमरा, हंसा और उसका भाई जोधासिंह बातें कर रहे हैं)

हंसा—तुम जा क्यों रहे हो भैया? इतनी जल्दी क्या है! सिवा आप लोगों के और चंड के मेरा और है ही कौन? चंड का तो हाल यह है कि उसे खाने-पीने की भी फ़ुरसत नहीं है। राज-काजके धन्धोंमें ही लीन रहता है।

जोधासिंह—(व्यंग्यसे) जहां चंड जैसे कुशाग्रबुद्धि पुरुष राजकाज का सारा काम सम्भाले हुए हों, वहाँ हमें कौन पूछता है?

हंसा—चंडकी प्रशंसा करने से मेरा उद्देश्य तुम्हारी निन्दा करना नहीं था।

जोधासिंह—चंड की प्रशंसा से मेरा क्या बनता या बिगड़ता है! परन्तु मेरी यह चेतावनी याद रखना बहन, कि चंडका सम्मान जितना अधिक होगा उतना मुकुलका भविष्य अधिक अन्धकारमय होगा।

हंसा—(विस्मयसे) क्या कह रहे हो भैया ? मैं तुम्हारी बात का रहस्य नहीं समझ सकी।

जोधासिंह—समझोगी खाक! तुम्हारी बुद्धिपर तो चंडके स्नेहका परदा पड़ा हुआ है। तुम राज-नीतिकी इन कूट चालोंके धर्म को न समझ सकोगी।

हंसा—कूट चालें कैसीं ?

जोधासिंह—तुम समझती हो कि चंडका प्रजाको सुखी और सन्तुष्ट रखनेका प्रयास निस्स्वार्थ है ?

हंस—यह सब कुछ वह मुकुल के हितके लिए कर रहा है। मैं तो निस्स्वार्थ ही कहूंगी।

जोधासिंह—मुकुलके हितकेलिए या अपना रास्ता साफ करनेके लिए! ऐसी चेष्टाओंसे वह प्रतिदिन प्रजाजनोंके हृदयोंमें अपना अड्डा जमा रहा है।

हंसा—(उत्सुकतासे) अड्डा जमानेका कारण ?

जोधासिंह—कारण यही कि जब मुकुलको राज्य सौंपनेका अवसर आये तो प्रजाके लोग ही मुकुलको राजा माननेको रज़ामन्द न हों। इससे न लाठी टूटेगी और न भैंस मरेगी, उसका कार्य अनायास सिद्ध हो जायगा।

हंसा—मैं इस बात को न मानूंगी। यदि उसे राज्यकी लालसा होती तो इसे स्वयं छोड़ता ही क्यों ?

जोधासिंह—यह भी सर्वप्रिय बननेका एक ढङ्ग था। उसने सोचा होगा कि सब राज-काज तो मेरे हाथों में रहेगा हीं, फिर त्यागका ढोंग रचकर सबका प्रशंसापात्र बननेमें क्या हर्ज है।

हंसा—यह बात है ?

जोधासिंह—यह बात नहीं तो और क्या है! बड़ेसे बड़े मन्त्रीसे

लेकर छोटेसे छोटे कर्मचारी तकको उसने ऐसा वशमें कर रक्खा है कि सबके सब उसके इशारोंपर नाचते हैं ।

हंसा—(चिन्तानिमग्न होकर) कोई बात समझ में नहीं आती। चंड आग्रही है, उद्धत है, शायद कटुभाषी भी होगा। पर इतना राज्यलोलुप नहीं हो सकता।

जोधासिंह—तुम स्त्री हो बहन, किसी स्त्रीकी सहानुभूति प्राप्त करनेके लिये दो चार चिकनी-चुपड़ी बातें ही काफ़ी हैं।

(पद्मा आती है)

हंसा—आओ पद्मा, तुम कैसे आई ?

पद्मा--आपहीको खोज रही थी महाराणीजी।

हंसा—कारण ?

पद्मा—(जोधासिंह की ओर इशारा कर) युवराज मारवाड़को लौटने वाले हैं, यदि मुझे भी अनुज्ञा हो तो मैं भी.........

हंसा—दुत् पगली ! भैया तो महाराजकी मृत्युपर सहानुभूति प्रकट करनेके लिए आये थे, कार्य समाप्त होने पर जा रहे हैं, पर तुम कैसे जा सकती हो ! तुम तो (जरा मुस्करा कर) मुझे दहेजके साथ मिली हो, मेरी सम्पत्ति हो।

पद्मा—(मुँह बनाकर) यहां प्रतिदिन मानसिक वेदनाकी आगमें कौन जलता रहे।

हंसा—वेदना कैसी ?

पद्मा—आँखोंसे देखी मक्खी तो नहीं निगली जाती। जब देखती हूँ कि कुमार चंड......(रुक जाती है)

हंसा--रुक क्यों गई हो ?

पद्मा—छोटा मुँह, बड़ी, बात, मैं कौन हूं आप लोगोंकी घरेलू बातोंमें दखल देने वाली ! यह बात भी इसलिए मुखसे निकल गई

है कि कुमार मुकुलके हितों पर कुठाराघात होते देखकर कुछ आवेश में आगई थी।

हंसा—पद्मा, सच सच क्यों नहीं बताती! बात क्या है!

जोधासिंह—(पद्माको आँखका इशारा कर) सच्ची बातको छिपा क्यों रही हो? अपनी स्वामिनीसे न कहोगी तो और किसे कहोगी!

पद्मा—कुमार चंडके विरुद्ध कहने वाले की क्या दशा होगी-इसका भी कुछ पता है? वह कुत्ते की मौत मरेगा।

हंसा—यहां की स्वामिनी मैं हूं, मेरे रहते तुम्हें भय किसका?

पद्मा—(कुछ सहमीसी) महाराणीजी, हम लोग तो आपको स्वामिनी ही मानते हैं पर वास्तव में तो......

हंसा—(क्रोधसे) समझी। चंड राज्य का स्वामी नहीं, केवल एक उच्च कर्मचारीमात्र है, और वह भी तभी तक जब तक मुकुल अपने पाँवों पर खड़ा नहीं हो जाता।

जोधासिंह—तब तक तो चंड की जड़ें पाताल तक चली जायंगी।

पद्मा—अब भी तो राज्य का स्वामी वही है।

हंसा—तुम्हारे पास इसका प्रमाण क्या है?

पद्मा—प्रमाण! प्रमाण तो प्रतिदिन कई मिलते रहते हैं, पर आपसे निवेदन करनेका साहस नहीं हुआ। कलकी ही बात है कि जसवन्तसिंह, जिसके पूर्वज वंश-परम्परासे इस राज्यके भक्त रहते आये हैं, आपको मिलने आया था।

हंसा—पर वह तो मुझे नहीं मिला।

पद्मा—मिलता कैसे! राजमन्त्रीने मिलने ही नहीं दिया।

हंसा—(आवेशसे) मन्त्री का इतना साहस!

पद्मा—मन्त्री भी क्या करता! जिसकी लाठी उसीकी भैंस।

जोधासिंह—जब राज्यकी समग्र शक्ति चंडके हाथमें है तो मन्त्री उसीकी कठपुतली न बने तो क्या करे !

पद्मा—मन्त्री क्या, प्रत्येक कर्मचारी उसीके इशारों पर नाच रहा है ।

जोधासिंह—मुकुलको कोई पूछता ही नहीं ।

पद्मा—मुकुलको यदि न भी पूछें तो कोई बात नहीं, क्योंकि वह अभी बच्चा है, पर खेद इस बात का है कि जो राज्यकी वास्तविक स्वामिनी है उसे भी कोई नहीं पूछता ।

हंसा—(क्रोधसे) अब पूछेंगे । समस्त राज-काज मैं अपने हस्तगत करूंगी । (पद्मासे) पर यह तो तुमने बताया नहीं कि जसवन्तसिंह मुझे मिलना क्यों चाहता था ?

पद्मा—मुजे उससे पता लगा है कि आज कल चंड के आधिपत्य में कुमार मुकुल और आपके विरुद्ध एक बड़ा भारी षड्यन्त्र रचा जा रहा है । मुझको इसका किसी विश्वस्त सूत्रसे पता लगा है । इसी की सूचना देनेको वह आपके पास आया था । कुमार चंडको इस बात का पता लग गया और उसने इसे आप तक पहुँचने ही न दिया ।

हंसा—तो विद्रोहकी आग को सुलगाया जा रहा है ?

जोधासिंह—अभी तो सुलग ही रही है, परन्तु जब भड़केगी तो ऐसे ज़ोरसे भड़केगी कि उसको शान्त करना असम्भव हो जायगा ।

पद्मा—वह शान्त तब होगी जब उसमें मुकुल, आप और आपके सब सपक्षी जलकर भस्म हो जायेंगे ।

हंसा—(क्रोधसे) यह नहीं होगा । उस आगकी प्रत्येक चिन-

गारीको मैं अभी ठंडा किये देती हूँ। पद्मा, तुम अभी जाओ और चंडको मेरे पास भेज दो।

जोधासिंह—मुझे भी जानेकी अनुज्ञा हो। आप दोनोंके वार्तालापके समय मेरा पास होना उचित न होगा।

हंसा—हाँ, आपका न होना ही उचित है।

जोधासिंह—तो मुझे मारवाड़ जानेकी अनुज्ञा कब मिलेगी?

हंसा—परिस्थिति बिल्कुल बदल गई है भैया, इस समय आप लोगोंके परामर्शकी मुझे बहुत आवश्यकता होगी।

जोधासिंह—जैसी आपकी इच्छा। ज़रा मारवाड़की चिन्ता थी। खैर, महाराज काम तो चला ही रहे हैं। (जाते जाते) देखना चंडकी चिकनी-चुपड़ी बातोंमें न आजाना।

हंसा—इसकी चिन्ता न करो।

(जोधासिंह जाता है)

मातृभक्ति और पितृभक्तिका कैसा ढोंग रच रक्खा था! अपने स्नेहजालमें उसने मुझे ऐसा जकड़ रक्खा था कि मैं अपनी सत्ता तकको भुला बैठी थी, उसी पर सब कुछ छोड़ कर निश्चिन्त होगई थी। यदि मुझे पता लगता कि—

(चंडका प्रवेश)

चंड—प्रणाम माताजी!

(हंसा उसकी बातको नहीं सुनती और अपनी बातोंमें ही मग्न रहती है।)

हंसा—यदि पता लगता............

चंड—माताजी, किस विचारमें मग्न हो? क्या पता लगता—

हंसा—(सहसा चौंककर) आगये हो! यह पता लगता कि तुम विद्रोही, विश्वासघाती........

चंड—क्या कह रही हो माता ?

हंसा—माता-माता और भैया-भैया कह कर तुमने एक चतुर सपेरे की तरह हमें मन्त्रमुग्ध कर रक्खा था।.........

चंड—मेरी समझमें नहीं आता आप क्या कह रही हैं ? मैं तो आप लोगोके हितके लिए अपने प्राण.........

हंसा—रहने दो इन चिकनी-चुपड़ी बातोंको। हंसा अब तुम्हारे वाग्जालमें फँसनेवाली नहीं।

चंड—(विनयसे) आखिर पता भी तो लगे कि बात क्या है ?

हंसा—ऐसे भोले बने हो कि जैसे तुम्हें कुछ पताही नहीं ! क्या जसवन्तसिंह मुझे मिलने आया था ?

चंज—हां, आया था।

हंसा - फिर वह मुझे मिला क्यों नही ?

चंड—इसलिए कि मैंने उसका आपसे मिलना उचित नहीं समझा।

हंसा—क्यों ?

चंड—वह देरसे अपने किसानोंपर बहुत अत्याचार कर रहा है। इस वर्ष भी, कुछ उपज न होनेपर भी उसने उनसे कौड़ी कौड़ी वसूल करली है। अन्न को स्वयं उपजाने वाले होकर भी वे दाने-दानेको तरस रहे हैं। किन्तु स्वयं लगान अदा करनेका नाम भी नहीं लेना। आनाकानी करते करते उसने तीन मास बिता दिये हैं। मैंने जब उसे रुपये चुकानेको तकादा किया तो आपके पास फरियाद लेकर आया था।

हंसा—(क्रोधसे) यह क्यों नहीं कहते कि मेरे पास तुम्हारे षड्-यन्त्रोंका भांडा फोड़ने आया था।

चंड—मेरे षड्यन्त्र ! माता, आप भूल में हैं, चंड अपनी जिह्वाको स्वयं खींच लेगा यदि उससे पिता और आपके

विरुद्ध एक शब्द भी निकलेगा, हाथको काट डालेगा यदि वह आपके विरुद्ध उठेगा, हृदयको ही विदीर्ण कर देगा जब उसमें कोई विद्रोहके विचार उठने ही पायेंगे।

हंसा—अब तुम मेरी आँखोंमें धूल नहीं झोंक सकते। तुम मुझे और मुकुलको अपने रास्तेसे हटाकर राज्यको हथियाना चाहते हो?

चंड—(आवेशमें) माता, यह राज्य मेरा था, न्यायसे और बाहुबलसे मेरा हो सकता था, पर इसे ठुकराकर मैंने स्वयं मुकुलको दे दिया है। यदि मुझे इसकी लालसा होती तो मैं इसे देता ही क्यों?

हंसा—वह केवल ढोंग था।

चंड—(हताश होकर) मालूम होता है आपके हृदय में ईर्ष्या और मत्सरका बीज बोया गया है। मेवाड़के दुर्दिन आये मालूम होते हैं, ईश्वरही इसकी रक्षा करे तो करे!

हंसा—ईश्वर इसका रक्षक हो या न हो पर इसे अब तुम्हारी रक्षाकी आवश्यकता नहीं है। चंड, तू मेरे स्वर्गीय स्वामीका पुत्र है इसलिए किसी कठोर दंडका मैं विधान नहीं करती। नहीं तो पता है विद्रोहीके लिये क्या दंड होता है?

चंड—प्राणदंड। उसके लिए भी चंड तैयार है। जिस प्रकार राज त्यागकर उसने पितृभक्तिका परिचय दिया है उसी तरह प्राण त्यागकर मातृभक्तिका भी परिचय देगा।

हंसा—मत और फैलाओ इस पितृभक्ति और मातृभक्तिके जालको चंड! इसमेंसे जो मक्खी एक बार निकल चुकी है वह इसमें फिर न फँसेगी। अब भलाई इसीमें है कि तुम्हें तुरन्त मेवाड़की सीमासे बाहर होजाना चाहिये।

चंड—जो आज्ञा। (जानेको उद्यत होता है, रुककर) फिर भी मैं विनय करूंगा कि जब कभी इस दासकी मेवाड़को आवश्यकता पड़े तो तब भी उसके प्राण उसकी रक्षावेदी पर सदैव बलिदान होनेको तत्पर होंगे।

हंसा—उनको इसे आवश्यकता न होगी।

(हंसा उठ पड़ती है । चंड हंसाको प्रणाम कर जाता है। हंसा प्रणामका उत्तर भी नहीं देती और चली जाती है।)

(यवनिका पतन)

चतुर्थ अंक

पहला दृश्य

स्थान—चित्तौड़ से कुछ दूरी पर एक सड़क । कुमार चंड और रामसिंह आते हैं । चंड अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हैं ।)

चंड—मेरा कहना मानो, आग्रह छोड़ो ।

रामसिंह—दिल नहीं मानता कुमार ! जब एक घड़ी भी कभी आपके चरणोंका साथ नहीं छोड़ा तो अब आजीवन वियोगको कैसे सह सकूंगा !

चंड—आजीवन वियोग कैसा ! पहले मुझे कहीं ठिकाना तो करने दो, पीछे यदि तुम्हारी आवश्यकता पड़ी तो तुम्हें अवश्य बुला लूंगा ।

रामसिंह—ऐसी अवस्थामें आपको अकेला छोड़नेको दिल नहीं मानता ।

चंड—अकेला कहां हूँ ! (तलवार निकालकर) यह जो मेरे साथ है ।

रामसिंह—इसके तो आप धनी हैं ही ! फिर भी परदेशमें कोई न कोई विश्वस्त साथी होना ही चाहिए ।

चंड—उसकी चिन्ता न करो रामसिंह, लगभग दो सौ चुने हुए विश्वासपात्र भीलोंने मेरे साथ रहनेका निश्चय किया है, वे भी सब पीछे आयेंगे ।

रामसिंह—(आँखों में आँसू भर कर) क्या उन दोसौ सौभाग्यशाली अनुयायियोंमें भी मेरा स्थान नहीं है ?

चंड—(उसके कंधे पर हाथ धर कर) तुम्हारा स्थान उनमें नहीं, मेरे हृदयमें है भैया । तुम शायद नहीं जानते कि मुझे भी तुमसे

वियुक्त होते कितनी वेदना होरही है ! पर तुम्हें मेवाड़में एक आवश्यक कामके लिए छोड़ रहा हूं ।

रामसिंह—(उत्सुकतासे) क्या है वह कार्य ?

चंड—मेरा दृढ़ विश्वास है कि माताने इस समय जो कुछ किया है, वह एक भीषण षडयन्त्रका परिणाम है, नहीं तो उनका स्वभाव इतना कटु नहीं है ।

रामसिंह—छोड़ो इन बातोंको कुमार, कभी विमाताका हृदयभी स्निग्ध हुआ है !

चंड—तुम्हारी भी तो विमाता थी, तुम तो कहते थे कि उसका हृदय अतिस्निग्ध था ।

रामसिंह—(दीर्घ निश्वास छोड़कर) निस्सन्देह अतिस्निग्ध था, पर मुझ पापीके भाग्यमें उस स्नेहामृतका पान करना लिखा न था।

चंड—मेरी माताके हृदयमें भी स्नेहका अगाध स्रोत था, पर उसे ईर्ष्या और मत्सरकी आगसे किसीने शुष्क कर दिया है। इस समय माताके इरद-गिरद रहनेवाले जो कर्मचारी हैं उनपर मुझे विश्वास नहीं है। प्रधानमन्त्री और राज्यके उच्च कर्मचारियोंपर वे सन्देह करती हैं, समझा जा रहा है कि वे मेरे ही पक्षके हैं। ऐसी अवस्थामें एक ऐसे मनुष्यका यहां होना आवश्यक है जो सब प्रगतियोंका निरीक्षण करता रहे और मुझे उनका पता देता रहे । यह काम तुम जैसे विश्वस्त मित्रके सिवा और किसको सौंप सकता हूं !

रामसिंह—दालमें कुछ काला-काला तो अवश्य है कुमार ! तीन दिनकी बात है उद्यानके एक गुप्त कोनेमें राजमाताकी दासी पद्मा और जोधासिंह कुछ कानाफूसी कर रहे थे ।

जब उन्होंने मुझे देखा तो अवाक् रह गये। उनकी आकृतिसे स्पष्ट मालूम होता था कि उनके हृदय शुद्ध नहीं।

चंड—(विस्मयसे) क्या मामा जोधासिंह भी इस षडयन्त्रमें सम्मिलित है! तब तो इसका परिणाम महान अनर्थ होगा। जिस वृक्षकी जड़को ही घुन लग रहा हो, वह अब गिरा तब गिरा।

रामसिंह—तब तो मुझे यहीं रहना चाहिये।

चंड—अवश्य, और सचेत होकर रहना चाहिये।

रामसिंह—यहां रहनेसे शायद एक और काम भी हो जाय!

चंड—कौन सा?

रामसिंह—शायद माताजीसे अपने अपराध क्षमा करा सकूं।

चंड—अपराध! कौनसा अपराध! तुमने माताजीका कौनसा अपराध किया है?

रामसिंह—राजमातासे नहीं, अपनी मातासे।

चंड—क्या तुम्हें उसका पता है?

रामसिंह—पता है।

चंड—कौन है वह?

रामसिंह—वही भिखारिन। (अपने आप) वास्तवमें वह भिखारिन नहीं, मैं भिखारी हूं। उनकी क्षमाका भिखारी हूं।

चंड—क्या तुमने कभी उसे देखा है?

रामसिंह—देखा है।

चंड—कब?

रामसिंह—उसी दिन, जब वे मुझे देखकर भाग गई थीं।

चंड—उस समय तो तुमने बताया नहीं।

रामसिंह—उस समय मुझे ज्ञान न था।

चंड—ज्ञान कब हुआ ?

रामसिंह—जब राजमाताजीके मुखसे उनके जीवनकी करुणगाथाको सुना तो ज्ञान हुआ कि मैं ही निष्ठुर उनके कष्टोंका कारण हूं।

चंड—उस समय तुम्हारी आकृतिको देखकर मैं भी भाँप गया था कि शायद वही तुम्हारी माता है, पर दूसरे ही क्षण विचार हुआ कि शायद अपनीसी घटना का वृत्त सुनकर तुम्हारे हृदय पर आघात हुआ हो।

रामसिंह—मैं भी आपके विचार को भाँप गया था।

चंड—तब तो तुम दोनों एक दूसरे को पहचान गये हो।

रामसिंह—मैं तो पहचान गया हूं, वे भी पहचान गई होंगी, तभी तो मुझे देखकर ऐसी भागी थीं, जैसे व्याध को देखकर मृगी भागती है।

चंड—मुझे एक बात सूझी है रामसिंह। अपनी माताके द्वारा तुम बहुत कुछ कर सकोगे—महलकी गुप्त खबरें पा सकोगे और माताजी को वास्तविक परिस्थितिका परिचय भी दे सकोगे। तुम्हारी माता पर उन्हें बहुत श्रद्धा है।

रामसिंह—यह सब कुछ तब हो सकता है कि जब मैं उन्हें पा सकूं, पर वे तो मेरी परछाईं से ही भागती हैं। उस घटनाके बाद मैंने उन्हें बहुत खोजा पर वे नहीं मिलीं।

चंड—मिल जायगी, यहीं कहीं होगी। अच्छा, अब हमें वियुक्त होना चाहिए। (चलता-चलता) इन बातोंको भूलना नहीं।

रामसिंह—(साश्रु नेत्रोंसे) कभी भूल सकता हूं!

(चंड जाता है ।)

रामसिंह—(दीर्घ निश्वास छोड़कर) फिर शायद ही मेल हो !

(जाता है ।)

(परदा उठता है)

दूसरा दृश्य

(स्थान—मेवाड़, राजमहल से सटा हुआ दरबार का एक कमरा। एक चौकी पर राजमाता हंसा बैठी है और दूसरी पर उसका पिता रणमल्ल बैठा है ।)

रणमल्ल—तुमने बहुत दूरदर्शिता से काम लिया था बेटी, जो मुझे भी यहां बुला लिया था ।

हंसा—अकेले भैयाजी से सब काम निबटते न देखकर आपको कष्ट दिया था ।

रणमल्ल—उचित किया था, नहीं तो चंड के षड्यन्त्र को तोड़ना अकेले जोधासिंह का काम न था ।

हंसा—षड्यन्त्रमें कौन कौन शामिल थे ?

रणमल्ल—एक दो हों तो उनके नाम लूं । प्रधानमन्त्री आदि कितने ही उच्चपदस्थ कर्मचारी उसमें सम्मिलित थे ।

हंसा—उसे तोड़ा कैसे है ?

रणमल्ल—विषवृक्षको नष्ट करनेका एकही तो उपाय है–उसके मूलको ही काट देना ।

हंसा—मैं आपका आशय नहीं समझी ।

रणमल्ल—मेरे कहनेका आशय यह है कि प्रधानमन्त्री और उसके

सहायकों के सब पद छीन कर उन्हें दशनविहीन सर्पोंकी तरह अघातक बना दिया गया है।

हंसा--जो पद रिक्त हो गये हैं उनपर किस किस को नियुक्त किया है ?

रणमल्ल—किसी भी पद के योग्य कोई मेवाड़निवासी नहीं मिल सका। जो कोई दो चार मिले भी वे सब चंड के रंगमें रंगे हुए थे, उन्हें नियुक्त करना 'कुँएसे बचकर खाड़ीमें गिरना' होता।

हंसा—तो फिर आपने क्या किया ?

रणमल्ल—करता क्या ! विवश होकर मंडोर और मारवाड़ के दूसरे भागोंसे योग्य-योग्य व्यक्तियोंको बुलाकर नियुक्त करना पड़ा। इससे मारवाड़के राज्यसञ्चालनमें कुछ असुविधा तो अवश्य होगी पर यहांकी बिगड़ी दशाको सुधारनेका कोई और उपाय भी न था।

हंसा—(ज़रा चिन्तित होकर) इससे मेवाड़ के लोग असन्तुष्ट तो हुए होंगे, कौन अपनी स्वतन्त्रतामें विदेशियों का हस्तक्षेप सहन कर सकता है !

रणमल्ल—इस प्रकारके अवसरोंपर असन्तोष होना स्वाभाविक है, पर बुद्धिमानी इसीमें है कि उसका दमन शीघ्र ही किया जाय।

ंसा—दमन कैसे किया ?

रणमल्ल—दण्ड ही तो एक तुरन्त दमन-कारी उपाय है।

हंसा—क्या दण्डका प्रयोग किया है ?

रणमल्ल—कुछ अधिकतासे। देश-निर्वासनके अतिरिक्त कई लोगों-को कारावास भी देना पड़ा है।

हंसा—(खेद प्रकट करती हुई) इतना कुछ हो गया है और मुझे सूचना तक नहीं दी ?

रणमल्ल—सूचना देनेका अवकाश ही नहीं मिला। विद्रोहकी आग को यदि शीघ्र ही शान्त न किया होता तो वह इधर-उधर फैलकर भयंकर रूप धारण कर लेती।

हंसा—फिर भी.........

रणमल्ल—(बीचमें काटकर) राज्यसंचालनकी पेचीली समस्याओं को हल करनेमें स्त्रियोंकी बुद्धि काम नहीं करती। यदि हमें निर्वाध काम करनेका अवकाश न मिलेगा तो सफलता कैसे होगी !

हंसा—आप जो उचित समझें करें, पर.........

रणमल्ल--तुम निश्चिन्त रहो, (भावपूर्ण मुस्कराहटसे) हम जो उचित समझेंगे वही करेंगे। और तो कुछ नहीं कहना ?

हंसा—इस समय इतना ही कहना था।

रणमल्ल--मैं अब जाता हूं। (जाता है)

हंसा--(चिन्ता-निमग्न, आपही आप) क्या मैं गढ़े से निकल कर कुँएमें तो नहीं गिर रही !

(द्वारपाल आता है)

द्वारपाल—महारागी की जय हो। द्वारपर कुछ नगरनिवासी खड़े हैं और दर्शन की अनुज्ञा चाहते हैं।

हंसा—उन्हें आने दो।

(द्वारपाल जाता है)

नगरनिवासियोंका अकस्मात् यहां आना कुछ रहस्यमय प्रतीत होता है।

(कुछ नगरवासी आते हैं और झुककर प्रणाम करते हैं, फिर भूमिपर ही बैठ जाते हैं।)

हंसा--आप लोग किसलिए आये हैं ?

एक नगरवासी--हम आपकी सेवामें विनय करनेको आये हैं।

दूसरा नगरवासी--आप हमारी स्वामिनी हैं, स्वर्गीय महाराणाकी अर्धाङ्गिनी हैं। आप यदि हमारे प्राण भी मांगें तो हमें उन्हें देनेमें तनिकभी हिचकिचाहट न होगी, पर विदे......

(इधर उधर देखने लगता है।)

हंसा--रुको नहीं, जो कहना हो निर्भय होकर कह डालो।

नगरवासी--आप नहीं जानतीं महाराणीजी, इस नगरका कोना-कोना मारवाड़ी गुप्तचरोंसे भरा पड़ा है (हंसाके पीछेके परदे को कुछ हटाकर एक व्यक्ति झाँकता है, फिर परदा छोड़ देता है) यहांके लोग निर्भय होकर एक शब्द भी मुखसे नहीं निकाल सकते। हां--मैं कहने वाला था कि विदेशियोंके आगे हमारी गरदनें न झुकवाइये, हमें अपमानित न करवाइये, आखिर हम भी, राजपूत हैं।

हंसा--कुछ कहो भी, बात क्या है ?

एक नगरवासी--कहें भी तो क्या कहें! कहते लज्जा आती है। आपके पिता हमारे भी......

हंसा--मैंने समझ लिया है। पिताजीसे आप लोगोंको कुछ कष्ट हुआ होगा। वह होना स्वाभाविक था। कई बार सूखी घासके साथ गीली घास भी जल जाती है। चंडके सहकारी षड्यन्त्रियोंको दण्ड देनेमें ज़रा कुछ अधिक कठोरता से काम लिया गया होगा।

एक और नगरवासी--आजकल हमारी जो दुर्दशा हो रही है,

जिह्वा उसका वर्णन नहीं कर सकती। हम लोगोंके साथ कुत्तोंसा व्यवहार होरहा है। अपना घर होते भी हम वेघर हैं, अपना देश होते भी हम विदेशी हैं।

दूसरा नगरवासी--अपराधी यदि कोई मारवाड़ी हो तो उसे कोई पूछता तक नहीं, परन्तु असंख्य निरपराध मेवाड़ी भीषणातिभीषण दण्डोंकी यातनायें भोग रहे हैं।

हंसा—तुम इन अत्याचारों की फरियाद मेरे कर्मचारियोंसे क्यों नहीं करते?

कुछ नगरवासी--फरियाद किससे करें, अपराधीभी कभी अपराद्धकी फरियाद सुनता है?

एक नगरवासी—सबके सब उच्चपदोंसे मेवाड़ियोंको हटा कर उन पर मारवाड़ी रखे गये हैं। एक विजेताभी विजितसे ऐसे दुर्व्यवहार नहीं करता जैसे सीसोदिया-वंशजोंसे होरहा है।

एक दूसरा नगरवासी—यह सब कुछ एक चंड कुमारके न होनेसे हो रहा है। यदि वह होता तो......

हंसा--(क्रोधसे लाल होकर) नाम न लो उस पापीका। मालूम होता है शायद तुमभी उसके षडयन्त्रमें शामिल थे।

सब नगरवासी—(एक साथ) हमें न षड्यन्त्रका पता है और न हम उसमें शामिल हैं।

एक नगरवासी--माताजी, आप भ्रममें हैं। जिस राज्य-मुकुटको कुमार चंडने अपने हाथसे भैयाके सिर पर रखा हो उसे स्वयं उतारने को वह षड्यन्त्र क्यों रचेगा! हमें तो उल्टे ऐसा प्रतीत होता है कि मेवाड़के सच्चे हितैषी कुमार चंडको मेवाड़से निकलवाकर उसे हड़पनेको षडयन्त्र रचा जा रहा है।

हंसा—(क्रोधसे) तुम्हें शासनकी नीति पर आक्षेप करनेका कोई अधिकार नहीं है।

कुछ—(एक साथ) क्षमा करें, मुखसे यह बात अकस्मात् निकल गई है। नहीं तो हम तो केवल अपनी फरियाद लेकर ही आपके पास आये हैं।

हंसा—तुम्हारी फरियाद सुनली है। इस पर विचार किया जायगा।

(सब प्रणाम कर जाते हैं)

(अपने आप) जिस नीतिका पिताजी अवलम्बन कर रहे हैं उससे तो मेवाड़की समस्त प्रजा असन्तुष्ट हो जायगी ! प्रजा यदि असन्तुष्ट हो गई तो शासन-कार्य एक क्षणभी नहीं चल सकेगा। अतः वर्तमान नीतिमें कुछ न कुछ परिवर्तन करना ही होगा।

(जाने लगती है)

(रणमल्ल पुनः आता है)

हंसा—आप फिर आये हैं ?

रणमल्ल—हाँ, मुझे फिर आना पड़ा है। एक विश्वस्त सूत्रसे पता लगा है कि चंडने मांडूके शासकका आश्रय लिया है। यह भी सुना है कि वहां पर उसे सेनामें एक उच्च पद मिल गया है।

हंसा—फिर ?

रणमल्ल—मैं यह कहनेको आया हूं कि हमें अब अधिक सतर्क होना चाहिये, चंडके साथियों पर कड़ी निगाह रखनी चाहिये।

हंसा—आप नीतिज्ञ हैं जो चाहें करें, परन्तु आपकी नीतिसे जन-साधारणमें असन्तोष फैलने न पाये। सूखे बनको आग लगानेके लिए एक क्षुद्र चिनगारी ही काफी होती है।

रणमल्ल—इसका मुझे ध्यान है, तो भी दमनसे जो कष्ट होते हैं

उनका प्रभाव जनसाधारण पर थोड़ा-बहुत तो पड़ता ही है।

हंसा—और तो कोई समाचार नहीं है ?

रणमल्ल—बस यही कहना था । अब मैं जाता हूं । (चलनेको उठता है ।

हंसा—मैं भी जाती हूँ । (महलमें चली जाती है ।)

(परदेके पीछेसे एक मनुष्य आता है ।)

मनुष्य—(रणमल्लकी ओर बढ़कर, दबी आवाज़से) महाराजकी जय हो।

रणमल्ल—(मुड़कर देखता है ।) अमरसिंह, तुम यहां कैसे ?

अमरसिंह—आपही ने तो मुझे महाराणीके साथ रहने को नियत किया था ।

रणमल्ल—मुझे स्मरण आगया । महाराणीको इसका पता तो नहीं ?

अमरसिंह—लेशमात्र भी नहीं । मैं परछाईकी तरह उनका अनुसरण करता हूँ, तो भी उन्हें इसका ज़रा भी ज्ञान नहीं है ।

रणमल्ल—तुम अपने काममें बहुत प्रवीण हो अमरसिंह, तभी तो मैंने तुम्हें मंडोरसे यहां बुलवाया है। कोई विशेष बात ?

अमरसिंह—विशेष बात है तभी तो आपको कष्ट दिया है। आज शहरके कुछ लोग महाराणीके पास फ़रियाद लेकर आये थे।

रणमल्ल—फ़रियाद ! किसके विरुद्ध ?

अमरसिंह—आपके विरुद्ध । कहते थे कि सब उच्चपदोंसे सीसोदियोंको हटा कर वहां मारवाड़ियोंको रखा गया है और मेवाड़ियोंसे कुत्तोंसा व्यवहार हो रहा है ।

रणमल्ल—जैसा व्यवहार मैं चाहता हूं अभी वैसा नहीं हुआ, आगे होगा । उन्होंने क्या कहा था ?

अमरसिंह—इसी विषयकी बातोंसे आपकी निन्दा और कुमार चंडकी प्रशंसा करते रहे।

रणमल्ल—महाराणी चंडकी प्रशंसा सुनती रहीं ?

अमरसिंह—महाराणीजी पहले तो उनकी बातें ध्यानसे सुनती रहीं, पर जब उन्होंने चंडकी प्रशंसा शुरूकी तो वे उनसे रुष्ट हो गईं।

रणमल्ल—फिर ?

अमरसिंह—फिर उन लोगोंके अनुनय-विनयसे कुछ प्रभावित होकर कहा कि पिताजी के परामर्शसे मैं तुम्हारी शिकायतें दूर करनेका यत्न करूंगी।

रणमल्ल—अमरसिंह, आजसे महाराणीपर ज़रा और कड़ी निगाह रखना। देखते रहना कि उनके पास कौन कौन आता है।

अमरसिंह—बहुत अच्छा। (प्रणाम कर जाता है।)

रणमल्ल—(आपही आप) तभी मुझे जनसाधारण को सन्तुष्ट रखने को कहती थीं! हंसाका मुझे कोई भय नहीं है। चंडके अभावमें इसकी अब वही दशा है जो लोहमय पिंजरेमें बन्दी किए हुए उस पक्षीकी होती है, जो पिंजरेसे निर्मुक्त होनेके यत्नमें परों को बहुत फड़फड़ा कर शान्त हो जाता है और कुछ समयके बाद बेचारा उसीमें रहनेका आदी हो जाता है।

(जाता है)

(परदा गिरता है।)

तीसरा दृश्य

(स्थान—मेवाड़, बाज़ारका एक मार्ग। कुछ लोग आ-जा रहे हैं।)

एक नागरिक—(दूसरे चलते हुए नागरिकसे) कहां जा रहे हो भैया जगत्सिंह ?

जगत्सिंह—लगानका रुपया अदा करने दरबारमें जारहा हूं देवसिंहजी।

देवसिंह--मैंने तो सुना है कि अर्थसचिवने इस वर्ष वर्षा न होनेके कारण उसे मुआफ कर दिया था।

जगत्सिंह--अर्थसचिवने तो मुआफ कर दिया था, परन्तु महाराज--

देवसिंह—महाराजका नाम धीरेसे लेना, कहीं कारामें ही गल-सड़ कर प्राण देने न पड़ें !

जगत्सिंह—तुम ठीक कह रहे हो। आजकल नगरमें गुप्तचरोंको इस प्रकार छोड़ा हुआ है कि आत्मीयोंसे भी बात करते भय होता है।

देवसिंह—(धीरेसे) तुम महाराजके विषयमें क्या कह रहे थे ?

जगत्सिंह—वह कहना तो भूल ही गया। मैं कह रहा था कि अर्थ-सचिवने तो इस वर्षका लगान छोड़ दिया था, परन्तु महाराज रणमल्ल नहीं माने। उन्होंने कौड़ी-कौड़ी वसूल करनेकी आज्ञा दी है। साथ ही अर्थसचिव को पदच्युत कर उनके स्थानमें एक मारवाड़ी नियत कर दिया है।

देवसिंह—यही एक उच्चपदस्थ मेवाड़ी कर्मचारी बाकी रह गया था, वह भी......

(कुछ कोलाहल सुनाई देता है।)

देवसिंह—(अपनी बात को बीचमें ही छोड़कर) यह कोलाहल कैसा है ?

(सामनेसे कुछ लोग भागे-भागे आरहे हैं और उनके पीछे कुछ सिपाही डंडे लिये उन्हें खदेड़ रहे हैं। एक मनुष्य भागा-भागा उनके पाससे गुज़रता है।)

जगत्‌सिंह—(उस भागते हुए मनुष्यसे) भाग क्यों रहे हो विश्वनाथ? क्या बात है?

विश्वनाथ—(उत्तेजित सा उनके पास खड़े होकर) कुमार रघुदेवकी हत्या हो गई है।

देवसिंह—कुमारकी हत्या! अरे! कल तो मैंने उसे जंगलमें मृगया करते देखा था!

विश्वनाथ—तुम कलकी बात कहते हो! कई लोगोंने कुछ ही क्षण पहले उसे चंगा-भला देखा था।

देवसिंह—हत्या किसने की है?

विश्वनाथ—यही तो पता नहीं।

(कुछ और लोग भी वहां आकर खड़े हो जाते हैं)

एक मनुष्य—और किसने की होगी! इसी क्रूर रणमल्लने करवाई होगी।

(गानेकी आवाज़ आती है)

एक नागरिक—यह गानेकी आवाज़ कहांसे आरही है?

(देवसिंह कान लगाकर सुनता है।)

देवसिंह—वही भिखारिन गा रही है।

जगत्‌सिंह—लोग तो इसे पगली बताते हैं परन्तु बात प्रायः ऐसी कहती है जो ठीक अवसरके अनुकूल होती है।

(भिखारिन गाती-गाती आती है और उनके पास खड़ी होकर गाने लगती है।)

सदा यहां पर टिका न कोई, न आगे कोई टिका रहेगा।
न कर दुराचार निठुर बन्दे, न है भरोसा कि कल रहेगा ॥
असंख्य प्रासाद गगनचुम्बी, अभेद्य प्राचीर जीर्ण होकर,
सभी महीगर्भ-लीन होंगे, न नाम अथवा निशाँ रहेगा ॥
विशाल दोर्दण्ड जानुलम्बी, वृहत् उरस्थल, ललाट उद्धत,
चिता हि अवसान सबका निश्चित, न बल, न वैभव बचा सकेगा।
गये त्रिलोकीश कृष्ण, राघव, असंख्यसैन्येश कंस, रावण
यहां टिका है सदा न कोई, विचार तेरा है तु टिकेगा ?
अमित घृणित कार्य कर चुके हो, ठहर यहीं पर, न और बढ़ तू।
प्रकोप उस ईशका महीपर, तडित् गिरा भस्मसात् करेगा ॥

(सब लोग गाना सुनते-सुनते मूर्तिवत् खड़े रह जाते हैं । इतनेमें कुछ सिपाही आते हैं और डंडे मार मार कर उन्हें खदेड़ते हैं। कुछ लोग भाग जाते हैं और कुछ खड़े रहते हैं । एक सिपाही एक डंडा भिखारिनके सिर पर लगाता है और वह बेहोश होकर गिर पड़ती है।)

कुछ लोग—(सिपाहियोंसे) अरे निर्लज्जो ! नराधमो ! इसी नगरके निवासी होकर यहीं के निवासियोंको पीटते तुम लोगोंको लज्जा नहीं आती !

एक सिपाही—लज्जा कैसी ! हमें जो आज्ञा हुई है, उसीका हम पालन कर रहे हैं। कर्तव्यपालनमें लज्जाका क्या काम !

जगत्‌सिंह—क्या तुम्हें यह भी आज्ञा हुई है कि निरपराधों और भिखारियों को पीटो ?

दूसरा सिपाही—हमें आज्ञा हुई है कि किसी स्थान पर भी जनताको एकत्र न होने दिया जाय।

कुछ लोग—जब नगर के सब लोग एकत्र हो जायेंगे तो तुम मुट्ठीभर सिपाही उनका क्या बिगाड़ सकोगे !

(एक सिपाही डंडा उठा कर उसे मारनेको उद्यत होता है। दो तीन मनुष्य मिलकर उससे डंडा छीन लेते हैं और डंडे वालामनुष्य सिपाहीको मारनेको उद्यत होता है। इतनेमें रामसिंह आता है।)

रामसिंह—(उन लोगोंको सिपाहीको मारनेको उद्यत देखकर, दूरसे ही) ठहरो, ठहरो, ऐसा अनर्थ न कर डालना। सिपाहीको कुछ मत कहना।

(भागता-भागता उनके पास आता है। उस मनुष्य के हाथसे डंडा छीन कर) यह क्या करने लगे हो भैया ! शान्ति और धैर्य से काम लो। यह अवसर लड़ने का नहीं।

कुछ लोग—लड़ें नहीं तो, इनसे पिट जावें !

रामसिंह—लड़कर क्या करोगे ! जानते नहीं हो आज-कल मेवाड़ का शासन क्रूर और अन्यायियोंके हाथोंमें है। तुम लोगों के तनिक भी उत्पातसे उन्हें तुम्हारा सत्यानाश करनेका एक बहाना मिल जायगा। इस समय हम निर्बल हैं—लड़नेसे काम न चलेगा। (डंडा उस सिपाहीके हाथमें देकर) यह लो अपना डंडा भैया, ईश्वर तुम्हारा भला करे, तुम्हें सुबुद्धि दे। (सिपाही चले जाते हैं) तुम लोग यहां जमा क्यों हो गये थे ?

जगत्‌सिंह—लगानके फिर लग जाने पर हम विचार कर ही

रहे थे कि कुमार रघुदेवकी हत्याकी बात सुन कर ये लोग भी यहां आगये। इतनेमें भिखारिन गाती......

रामसिंह—(उसकी बातको काटकर) भिखारिन! कहां है वह ?

देवसिंह—यहीं तो भूमिपर बेहोश पड़ी है। उसी सिपाहीके डंडेके प्रहारसे यह बेहोस होगई थी, जिसको आपने हमारे चंगुलसे छुड़वाया था। (यह सुनतेही रामसिंह भिखारिनके पास बैठ जाता है और उसका सिर उठाकर अपनी गोदमें रख लेता है। फिर आंखोंमें आंसू भरकर) भाइयो, अब इस राज्यसत्ताके अन्तिम दिन समीप आगये हैं—जिस किसीने स्त्रियों पर हाथ उठाया है उसकी सत्ता मिटते देर नहीं लगी। अत्याचारी रावणने जनकनन्दिनी सीताके सतीत्वको जब अपहरण करना चाहा तो रघुपतिके हाथोंसे उस नराधमका समूल उन्मूलन हो गया। कौरवापसद दुर्योधन को सती द्रौपदीके अपमानका मालूम है क्या फल भोगना पड़ा? वह नरपिशाच एक सौ भाइयों और ग्यारह अक्षौहिणी सेनाको साथ लिए नरककी भीषण आगमें जलकर राख होगया। मेवाड़के वर्तमान शासककी भी वही गति मुझे अब, जब कि उसने इस सतीपर हाथ उठाया है, उस दीवारपर स्पष्ट अक्षरोंमें लिखी दिखाई देरही है! भाइयो, अब तुम्हारे लिये अधिक देर तक यहां ठहरना उचित नहीं।

देवसिंह—पर इस अबला........

रामसिंह—(उसकी बात काट कर) इनकी आप चिन्ता न करें। इनकी सेवाका भार बचपनसे ही मेरे कंधोंपर है, उसे उतारना मेरा कर्त्तव्य है।

(एक एक कर सब जाते हैं ।)

रामसिंह—(भिखारिनके सिरपर हाथ फेरता हुआ) माँ, माँ, बोलोगी नहीं ? क्या सदा रूठी रहोगी ?

(भिखारिन को कुछ होश आता है, और रामसिंहको अपने पास देखकर उसके मुँहसे चीख़ निकल जाती है । जोशसे ऊठ कर)

भिखारिन—मुझे भागने दो, मैं यहां न रहूंगी । दर-दर भीख मांगकर मैं किसी न किसी तरह अपना पेट पालती हूं, तुमसे कुछ नहीं मांगती। फिर भी क्या मेरा पीछा न छोड़ोगे ? शहरसे भी निकलवाओगे क्या ?

रामसिंह—(उसके चरणों पर सिर रख कर) माँ, अब बहुत लज्जित न करो । यह पापात्मा तुम्हारे चरणरजको भी स्पर्श करने के योग्य नहीं है ।

भिखारिन—(आश्चर्यसे) क्या तुम वही रामसिंह हो !

रामसिंह—वह पापी रामसिंह मर चुका है माँ, पश्चात्तापकी आगमें राख हो कर उसने यह पुनर्जन्म लिया है ।

भिखारिन—रामसिंह, मैं तो समझ रही थी कि तू......

रामसिंह—अवश्य निष्ठुर था । परन्तु जिस देवताका मैं पुजारी हूं, उसीके वरदानसे मेरी आँखोंके सामनेसे कल्मषका आवरण हट गया है ।

भिखारिन—वह देवता कौन है बेटा ?

रामसिंह—उसे तुम जानती हो । उसे कौन नहीं जानता ? जैसे तुम आदर्श-माता हो उसी तरह वह आदर्श-पुत्र है, तुम्हारी तरह घरसे निर्वासित होकर परदेश की राख छान रहा है ।

भिखारिन—(दीर्घ निश्वास छोड़कर) तुम्हारा अभिप्राय कुमार चंडसे है ?

रामसिंह—हां, उसीसे।

भिखारिन—वास्तवमें वह पारस है, जिसने उसका स्पर्शमात्र भी किया है-वह सुवर्ण हो गया है।

रामसिंह—उसी चंद्रके स्पर्शसे मेरा वज्रसम हृदय भी चंद्रकान्तको स्नेह-बिन्दुओंको टपकाने लगा है?

भिखारिन—तुम्हारे विचारोंमें ऐसा परिवर्तन देखकर मुझे अपार हर्ष हुआ है रामसिंह।

रामसिंह—(उसके चरण पकड़ कर) ज्येष्ठकी दुपहरीकी कड़ी धूपसे संतप्त पुरुषकी आत्माको शीतल जलसे ऐसा आनन्द न आता होगा माता, जितना आनन्द आपके चरणकमलके स्पर्शसे मेरे हृदयको आ रहा है। अब मैं इन्हें अपने मस्तकसे कभी अलग न होने दूंगा। आजसे इस वृत्ति को छोड़ो, बहुत दिनोंसे मातृस्नेहसे स्निग्ध भोजनसे वंचित रहा हूँ, अब मरणपर्यन्त उसे ओठोंसे अलग न होने दूंगा।

भिखारिन—शायद तुम्हारा यह विचार होगा कि मैंने इस वृत्तिका अवलंबन रोटीके दो टुकड़ोंके लिये किया है। कदापि नहीं। भिक्षा और गायन मेरे व्यवसाय नहीं, एक लक्ष्यके साधन हैं। इन्हींके द्वारा मैं दीर्घ निद्रासे आक्रान्त मेवाड़के लोगों को जगा-जगा कर सचेत कर रही हूँ।

रामसिंह—यह तो तुम वही कर रही हो, जो मैं करना चाहता हूँ। हम दोनोंका ध्येय एक ही है। अतः मिलकर काम करनेमें सफलता की अधिक आशा है।

भिखारिन—मुझे तुम किस कामके योग्य समझते हो?

रामसिंह- राजमातासे तुम्हारी जान पहचान कैसी है?

भिखारिन - पर्याप्त।

रामसिंह—फिर तो ठीक है । तुम अपने आचरणसे इनकी मनोवृत्ति बदलनेका प्रयत्न करो ।

भिखारिन—केवल महाराणी के विचारपरिवर्तनसे काम न चलेगा। जब तक कुमार चंड...

रामसिंह—कुमारकी चिन्ता न करो। यहां की प्रगतियोंका मैं उन्हें निरन्तर पता देता रहता हूँ।

भिखारिन—क्या कुमारके हृदयमें मेवाड़के लिये प्रेम कुछ शेष है ?

रामसिंह—वह कम ही कब हुआ था ?

भिखारिन—फिर यहां आनेमें क्या अड़चन है ?

रामसिंह—क्या कोई भी पुरुष जिसमें स्वाभिमानका लेशमात्र भी हो, वहीं आनेको उद्यत हो सकता है जहांसे उसे निर्वासित किया गया हो ?

भिखारिन—यह तो ठीक है, पर जिसने निर्वासन दिया हो, यदि वही उसे लौटानेको लालायित हो तो ?

रामसिंह—यह बात नितान्त भिन्न है। फिर वह क्यों न आयेगा ?

भिखारिन—तो मुझे राजमाताकी मनोवृत्तिमें परिवर्तन करनेको भरसक प्रयत्न करना चाहिये। परन्तु केवल उनकी अनुकूलतासे काम न चलेगा, कुमारको भी अपना आग्रह छोड़ना पड़ेगा।

रामसिंह—कुमारसे आग्रह छुड़वाना ज़रा टेढ़ी खीर है, पर यह काम मुझ पर छोड़ो, किसी न किसी तरह इसे करके ही दम लूंगा।

भिखारिन—अब हम दोनोंको अपना अपना काम देखना चाहिये।

रामसिंह—तुम्हारी चरणसेवा छोड़नेको दिल तो नहीं मानता, पर विवशता है। (चलनेको उद्यत होता है)

भिखारिन—फिर मेल कहां होगा ?

रामसिंह—जहां परिस्थिति करवायेगी। (जाता है)

भिखारिन—मेरे जीवनकी निरुद्देश्य यात्रामें यह पहला दिवस है कि जब मैं शान्ति और आनन्दसे कुछ घड़ियां बितानेको किसी पड़ाव पर पहुँची हूं। (जाती है)।

(परदा गिरता है ।

चौथा दृश्य

(स्थान—मेवाड़, बाज़ार का एक भाग । कई लोग आ-जा रहे हैं । एक ओरसे पद्मा आती है और दुसरी ओरसे जोधासिंह आता है । पद्मा जोधासिंहको नहीं देखती और उसके पाससे गुज़रने लगती है।)

जोधासिंह—(पद्माको देखकर ज़रा दबी आवाज़में) पद्मा !

(पद्मा जोधासिंहको देखकर उसके पास खड़ी हो जाती है ।)

पद्मा—(अभिवादन कर) आप यहां खड़े हैं ?

जोधासिंह—दो पुरुष यहांसे कुछ दूरीपर धीरे-धीरे बातें कर रह थे। मुझे देखकर वे सहम गये और वहांसे टल गये। मुझे उनपर संदेह हो गया और मैं उनका पीछा करने लगा। पर वे तुरन्त लुप्त होगये, न मालूम कहां गये हैं ? उन्हींको खोज रहा रहा हूं ।

पद्मा—आज-कल ज़रा अधिक सजग रहना चाहिये । मुझे पता लगा है कि चंडके कई दूत मेवाड़में रहते हैं और यहांकी बातें उस तक पहुँचाते रहते हैं !

जोधासिंह—ठीक होगा । मुझे तो उस भिखारिनपर भी संदेह

है। जब देखो राजमहलके ही गिरद चक्कर काटती रहती है।

पद्मा—राजमातासे उसकी घनिष्ठता प्रतिदिन बढ़ रही है।

जोधासिंह—तुम्हें ज़रा पहलेसे भी अधिक सावधानता और दक्षतासे काम लेना होगा और जैसा मैं कहूँ वैसाही करना होगा।

पद्मा—क्या उस दिन मैंने आपके कहनेके अनुसार नहीं किया था?

जोधासिंह—उस दिन तो तुमने कमाल कर दिया था पद्मा। तुम्हारी एक एक बातका हंसापर बहुत प्रभाव पड़ा था।

पद्मा—प्रभाव पड़ा था तभी तो चंडको तुरन्त बुलवाकर देशनिर्वासन दे दिया था।

जोधासिंह—देखना कहीं जसवंतसिंहकी वास्तविक बातका हंसाको पता न लग जाय।

पद्मा—आपने मुझे मूर्ख समझ रक्खा है क्या? मैंने उसका उपाय दूसरे दिनही कर दिया था। जसवंतसिंहको कह दिया था कि राजमाता तुम पर क्रुद्ध हैं। उनके सामने कभी भी मत जाना। तबसे डर कर उसने घरसे निकलना ही छोड़ दिया है।

जोधासिंह--यह तो अच्छा होगया है। आजकल यहांकी परिस्थिति हमारे अनुकूल है। चंड शहर छोड़ गया है और रघु संसारही छोड़ गया है, मुकुल अभी अबोध बालक है, इसलिए मेवाड़को हस्तगत करनेके मार्गमें कोई बाधा नहीं रही।

पद्मा—फिरभी सतर्क रहना आवश्यक है। चंडके स्वभावको आप जानते ही हैं, वह बदला लेनेकी कोई न कोई युक्ति अवश्य सोच रहा होगा।

जोधासिंह—युक्ति सोचनेसे क्या होगा ! उसका मेवाड़में प्रवेश ही असंभव है। चित्तौरके प्रत्येक द्वारपर उन सैनिकोंको रक्खा गया है जो उसे जानते हैं ! उन्हें आज्ञा दी गई है कि उसे देखते ही मार डालें।

पद्मा—यह तो ठीक किया है। तो भी हम लोगोंको सजग रहना चाहिये। मुझे भी कोई काम करनेकी आज्ञा है ?

जोधासिंह—कोई विशेष नहीं, केवल यही कि अन्तःपुर की खबरें मुझे पहुंचाती रहना, और महाराणी और भिखारिन दोनों पर कड़ी निगाह रखना।

पद्मा—बहुत अच्छा। (अभिवादन कर एक ओर चली जाती है और जोधासिंह दूसरी ओर चला जाता है। उनके जानेके बाद सड़क परके एक मकानके द्वारके पीछे छिपे हुए दो मनुष्य निकलकर सड़क पर आते हैं।)

एक मनुष्य—भवानीसिंह, सुनी इन दोनोंकी बातचीत ? क्या इससे स्पष्ट नहीं कि कुमार रघुदेवकी हत्याके कारण यही लोग हैं ?

दूसरा मनुष्य—पहले तो कुछ सन्देह था, परन्तु अब पूरा निश्चय हो गया है।

भवानीसिंह—इसका पता कुमार चंडको अवश्य लग जाना चाहिये।

दूसरा मनुष्य—लग तो जाना चाहिये, परन्तु किस तरह ? हम लोग तो जा नहीं सकते, क्योंकि यहांकी परिस्थिति क्षण-क्षणमें बदल रही है।

भवानीसिंह—और किसको भेजें ? प्रत्येक मनुष्य अपने अपने कर्तव्यमें लगा है।

दूसरा मनुष्य—कुमारके दोसौ भीलोंमें से लगभग सवासौ उनकी

आज्ञासे यहीं कोई न कोई काम कर रहे हैं। क्या उनमेंसे एक भी यह खबर उन तक न पहुँचा सकेगा ?

भवानीसिंह—भैया, एक तो हम उन सबको जानते नहीं हैं। दूसरे, कौन कौन कहां कहां है यह भी पता नहीं है। तीसरे, प्रत्येक व्यक्ति गुप्तसंदेश ले जाने के उपयुक्त भी नहीं है। इसलिये हममें से ही एक को जाना चाहिये। क्या मेरा ही जाना ठीक न होगा ?

दूसरा मनुष्य—यदि पीछेका काम आप मुझ अकेले पर ही छोड़ना उचित समझें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।

भवानीसिंह – दो चार दिन की तो बात है। मेरा निश्चय है कि तुम सब काम सफलतासे कर सकोगे।

दूसरा मनुष्य—यदि आपकी यही धारणा है तो आपही जाइये। हां, एक बात पूछनी रह गई है, भिखारिनके विषयमें ये क्या कह रहे थे ?

भवानीसिंह—मैं तो कुछ नहीं समझ सका, पर इसमें कुछ रहस्य है अवश्य। यह बातभी कुमार तक अवश्य पहुंचानी होगी।

दूसरा मनुष्य—एक बात और है, इन दोनोंकी बातोंसे यह भी स्पष्ट हो गया है कि इन्हींके षड्यन्त्रसे कुमारको निर्वासन

भवानीसिंह—इसमें तो अब सन्देह ही कुछ नहीं रहा।

जाता हूं।

दूसरा मनुष्य—अब चलना चाहिए। (भवानीसिंह एक ओर जाता है और दूसरा मनुष्य दूसरी ओर।)

यवनिका-पतन

पंचम अंक

पहला दृश्य

(स्थान—मेवाड़का राजदरबार, दरबारके विशाल कमरेकी चौड़ाईके ठीक मध्यमें दीवारसे सटा हुआ और चांदी का बना हुआ एक ऊँचा मंच पड़ा है। मंचपर बहुमूल्य रत्नोंसे जटित एक सुवर्णसिंहासन रक्खा है। सिंहासनके ऊपर एक बहुत बड़ा सुवर्णमय राजछत्र टंगा हुआ है। सिंहासनकी चौकीपर महाराज रणमल्ल अपनी गोदमें कुमार मुकुलको लिये बैठा है। सिंहासनके दोनों ओर भूमिपर कई सरदार बैठे हैं। उनमें अधिकांश मारवाड़ी हैं। सिंहासनके बाईं ओर कुछ ऊंचाईपर एक खिड़की है। उसके किवाड़ खुले हैं, परन्तु उनके स्थान पर एक काले रंगका रेशमी परदा लटक रहा है।)

एक मारवाड़ी सरदार—महाराज कुछ पता है आजकल चंड कहाँ है ?

रणमल्ल—क्या तुम्हें पता नहीं भागसिंहजी ? वह आजकल माडूमें सरकारी सेना में किसी उच्चपद पर है।

एक दूसरा मारवाड़ी सरदार—सेनामें ! (ठठाकर हंसता है) सेनामें क्या करता होगा ! शायद कहीं भाड़ झोंकता होगा।

एक तीसरा मारवाड़ी—खूब कहा राजसिंहजी, "कहीं भाड़ झोंकता होगा" (ठठा कर हंसता है) सेनाके सरदार होनेकी उसमें क्षमता होती तो यहींसे दुम दबाकर क्यों भाग जाता !

एक और मारवाड़ी सरदार—भागता न तो क्या करता ! कहीं सूर्य के प्रकाशमें खद्योत भी चमकता है ! (हंसता है)

एक और मारवाड़ी—यों क्यों नहीं कहते कि भगवान् सूर्यके उदय होते ही उलूकराज चुपकेसे गहनतम गुहाका आश्रय सेता है।

एक मेवाड़ी सरदार—(क्रोधसे तमतमा कर) निर्लज्जो ! तुम लोगोंने क्या लज्जाको एकदम तिलांजलि देदी है ? चंड की मातृभक्ति और भ्रातृस्नेह को तुम भीरुता कह रहे हो ? मेवाड़के भाग्याकाश पर चंड सूर्यके फिर उदय होते ही ये निशाचर कहीं भी नज़र न आयेंगे।

एक और मेवाड़ी सरदार—मारवाड़-जैसे मरुदेशसे शस्यश्यामल मेवाड़में आकर इन लोगोंके दिमाग़ ठिकाने नहीं रहे। जो लोग जलकी वूंद-वूंद और अन्नके कण-कणके लिए तरस रहे हों उन्हें यदि भरपेट भोजन मिल जाय तो उनकी यही दशा होती है।

रणमल्ल—(क्रोधसे) हमारे सामने विद्रोहकी ऐसी बातें करते तुम्हें भय नहीं क्या ?

पहला मेवाड़ी सरदार—भय किसका ? एक निर्लज्ज डाकूका ? जो अपनी पुत्री की सम्पत्तिको हथियाकर गुलछर्रे उड़ा रहा है।

दूसरा मेवाड़ी सरदार—विद्रोह कैसा ? अपनी मातृभूमिको आतता-यियोंके चंगुलसे छीनकर स्वतंत्र करना भी क्या विद्रोह है ! मेवाड़के वास्तविक स्वामीके हकमें एक-दो शब्द कहना भी क्या विद्रोह है ? विद्रोही तुम लोग हो नराधमो, जो अतिथि-रूपमें आकर यहांके मालिक वन बैठे हो !

रणमल्ल—(अत्यन्त क्रोधसे मारवाड़ी सरदारोंसे) तुम लोग इन नीचों को ले जाकर नगररक्षाधीशके सुपुर्द करो और उससे कहो

कि इन्हें कारागार की एक अंधेरी कोठरीमें वन्द करदे। वहां ही इन्हें अपनी करतूतोंकी आगमें जलकर स्वाहा होने दे। देखें इनका चंड इन्हें कैसे मुक्त करेगा!

एक मेवाड़ी सरदार—हम अपनी मातृभूमिकी स्वतन्त्रता-वेदी पर बलिदान होनेको सदा तत्पर हैं चांडाल! हमें पूर्ण विश्वास है कि चंड ही हमें उन्मुक्त करेगा।

रणमल्ल—ले जाओ इन्हें। (कुछ सरदार उन्हें पकड़कर लेजाते हैं) कुत्तेकी जब मौत होने वाली होती है तो वह चौराहेमें जा पड़ता है।

एक मारवाड़ी सरदार—आपका कहना ठीक है सरकार, आपकी अवज्ञा आग से खेलनेके समान है।

(कुमार मुकुलका एक खिलौना सिंहासनसे नीचे गिर जाता है। वह उसे उठानेके लिए सिंहासनसे उतरकर भूमिपर आजाता है। महाराज रणमल्ल, अकेलाही छत्रके नीचे सिंहासनपर बैठा रहता है।)

एक मेवाड़ी सरदार—(पास बैठे हुए एक दूसरेसे, धीमी आवाज़में) यह अपमान हम कभी न सह सकेंगे। मेवाड़के राजछत्रके नीचे सीसोदियोंके सिवा और कोई कभी नहीं बैठा।

दूसरा सरदार—(कुछ ज़ोर देकर) और न बैठने पायेगा। मेवाड़ और सब कुछ सहन कर सकता है पर इस अपमानको न सहेगा।

(खिड़कीके परदेको कुछ हटाकर एक स्त्री झांकती है और फिर परदा छोड़ देती है।)

रणमल्ल—(उन सरदारोंसे) यह कानाफूसी किस बात पर होरही है?

एक सरदार—(आवेशमें) मैं कह रहा था महाराज, कि मेवाड़का

राजछत्र मेवाड़के अधिपतिके सिवा और किसी अन्यके सिरपर नहीं झूल सकता।

रणमल्ल—जिसने कठिन समयमें मेवाड़की रक्षा की है वही मेवाड़का अधिपति है।

(सहसा हंसाकी दासी आती है।)

दासी—सभासदो, राजमाताजी आरही हैं!

(सभी सरदार उठ खड़े होते हैं और चले जाते हैं।)

रणमल्ल—उनका यहां क्या काम है?

(महाराणी हंसा आती हैं)

(महाराणा रणमल्लको राजछत्रके नीचे और कुमार मुकुलको भूमिपर खेलते देखकर क्रोधसे लाल होजाती है।)

हंसा—जो कुछ चपलाने कहा था, आखिर वही ठीक निकला। पिताजी, यह मैं क्या देख रही हूँ?

रणमल्ल—(रूखेपनसे) वही जो कुछ तुम्हें दिखाई दे रहा है।

हंसा—(आवेगसे) इस छत्रके नीचे बैठनेका अधिकार मुकुलका है। नानाके नातेसे आपको उसके अधिकारकी रक्षा करनी चाहिए।

रणमल्ल—(कुछ क्रोधसे) अब तक रक्षा नहीं करता रहा हूँ तो और क्या करता रहा हूँ?

हंसा—यह तो ठीक है और उसके लिए हम लोग आपके सदा आभारी रहेंगे, परन्तु छत्र......

रणमल्ल—(उसकी बातको बीचमें ही काटकर) यदि मैं इस छत्रकी रक्षा न करता तो मालूम है यह आज किसके सिर पर होता?

हंसा—(क्रोधसे) मेवाड़के राजपूतोंमें पूरी क्षमता थी कि इसकी रक्षा वे स्वयं करते।

रणमल्ल - (आवेशमें) यदि उनमें क्षमता है तो वे रणमल्लसे इसे क्यों नहीं छीन लेते ?

हंसा—आपकी लालसा यहां तक बढ़ गई है ?

रणमल्ल—इसमें लालसाकी क्या बात है ! बाहुबलसे प्राप्त वस्तुपर अधिकार करनेमें क्या बुराई है ! तुम और मुकुल दोनों आजीवन जो चाहो खाओ-पियो और आरामसे पड़े रहो, और क्या चाहते हो ?

हंसा—मुझे पता न था कि मैं सांपों को दूध पिला रही हूँ।

रणमल्ल—छोकरी ! अधिक वितंडावादका कोई काम नहीं । यदि हल्ला किया तो जो दशा रघुकी हुई है वही मुकुलकी भी होगी । (हंसा स्तंभितसी होकर खड़ी रह जाती है। और रणमल्ल सिंहासनसे उठकर चला जाता है।)

(परदा गिरता है।)

दूसरा दृश्य

स्थान—मेवाड़, राजमहल का एक कमरा । हंसा और उसकी दासी चपला दोनों बातें करती आती हैं।)

हंसा—चपला, समस्या बहुत विकट होगई है। समझमें नहीं आता अब क्या करना चाहिए।

(नेपथ्यमें से गाने की आवाज़ आती है।)

(कान लगाकर) यह आवाज़ तो भिखारिन की है । शायद अब भी मेरी समस्या को वही हल करे ! जा, उसे बुला ला।

(चपला जाती है।)

लोभ भी क्या ही बुरी बला है ! पुत्र और दौहित्रमें क्या

कुछ भेद है ! फिर भी लोभमें पड़ कर नाना अपने दौहित्र का गला घोंटने को उद्यत है ।

(दासीके साथ भिखारिन आती है)

•आओ बहन, मैं आज फिर एक संकटसागर में गोते खारही थी कि तुम्हारा गाना सुनाई दिया । कहो क्या गारही थीं ?

भिखारिन—गा क्या रही थी महाराणीजी, सोते हुए शेरको जगाने का प्रयत्न कर रही थी, जो जीवनका लक्ष्य है, उसे पूरा कर रही थी । यदि मेरे प्रयत्नोंसे यह सोता शेर जाग उठा तो हमारी, तुम्हारी, मेवाड़की, सबकी रक्षा, नहीं तो सर्व-नाश होगा ।

हंसा—क्या वह गाना मुझे भी सुनाओगी ?

भिखारिन—क्यों नहीं, सुनिये ।

(गाती है ।)

अब तो खोल आँख मृगराज,
मृग, मातंग, शृगाल, ऋक्षगण,
मनमानी करते निर्बाध ।
रहा न अब आतंक किसीका
हरेक बन बैठा बनराज ॥
अब तो.........

जिसकी मेघ-समान गरजके
भयसे थर्राते गगन ।

उसी केसरीके केसर को
मूसे काट रहे हैं आज ॥
अब तो.........

पुष्पित लतिका, फलित विटपगण-
से था कानन रहा विराज,
मरघट कर छोड़ा है उसको
तोड़-ताड़ फलफूलसमाज ॥
अब तो.........

तू जागा था सब सोये थे
छिपे हुए विवरों में भाज,
चंड सूर्यके प्रतापसे सब
जैसे भजते उलूकराज ॥
अब तो खोल आँख मृगराज ॥

(हंसाकी आँखें आँसुओंसे भर जाती हैं, और गाना सुनती-सुनती ऐसी तल्लीन होजाती है कि उसे अपनी सुधबुध नहीं रहती।)

हंसा—(सहसा चौंककर) क्या समाप्त होगया गायन ? नहीं बहन, अभी समाप्त न कर, अभी मृगराजकी आँख नहीं खुली, परन्तु मुझे विश्वास है कि तुम्हारे इन झकझोरोंसे जाग उठेगा—अवश्य जाग उठेगा।

भिखारिन—यदि आप समझती हैं कि मेरे गायनसे कुछ हित होगा तो मैं और गाती हूँ और तब तक गाती रहूँगी जब तक मेवाड़का कोना-कोना इसकी प्रतिध्वनिसे न गूंज उठेगा—

मृगराज जाग न उठेगा । उस समय मेरे जीवन-लक्ष्य की पूर्ति होगी ।

(फिर गाती है)

है क्यों सोया मेवाड़ आज ?
सिंहनाद बप्पा रावलका,
जौहरकी वह धधकती आग,
विमल कीर्ति हम्मीर वीरकी,
वीर चंडका आत्मत्याग ।
भूल गई हैं वे सब बातें ?
कुछ तो मनमें सोचो आज,
सबको जगा जगा कर भैया,
खुद सोया है तज कर लाज ॥

है क्यों सोया मेवाड़ आज ?

हंसा—बस बहिन, मृगराज जाग करही रहेगा । अब अधिक नहीं सो सकता। (आवेशमें उन्मत्तसी होकर, जोरसे) उठो मेवाड़! उठो मृगराज !! काफी सो लिया, अब और न सोने पाओगे। तुम्हें यह चिरनिद्रा त्यागनी ही पड़ेगी, मेवाड़की अधिष्ठात्री देवी जो तुम्हें जगा रही है।

दासी—महाराणीजी, धैर्य करो. यह समय आवेशमें आनेका नहीं।

हंसा—(कुछ शान्त होकर) चपला, तुम ठीक कहती हो । पर मेवाड़केसरीके सोनेपर मैं भी सो गई थी, मेरी बुद्धि भी सो गई थी। किन्तु इस देवीके इन झकझोरोंसे अब मैं जाग उठी

हूँ, मेरी बुद्धि भी जागृत हो गई है, अब मेवाड़ भी जाग उठेगा। (भिखारिनसे) मुझे अपनी भूलका पता लग गया है। मैंने घोर अपराध किया है, निर्दोष चंडके साथ जो अत्याचार किया था, उसका मैं प्रायश्चित्त करना चाहती हूँ। मुझे कोई मार्ग बताओ।

भिखारिन—यदि आपका मन साफ हो गया है तो मार्ग भी साफ और सरल है।

हंसा—(उत्सुकतासे) वह कौनसा ?

भिखारिन—चंडको मेवाड़में फिर बुला भेजो।

चपला—उसीके प्रतापसे मेवाड़ इन नरपिशाचोंके चंगुलसे बच सकेगा।

हंसा—क्या वह आयगा ? मेरा चंड क्या माता—नहीं-नहीं, विमाताका कहना मानेगा ? क्या इस पिशाचिनीके अनुनय-विनयका उस पर कुछ असर होगा ?

भिखारिन—अवश्य होगा बहिन, क्यों न होगा ? मालूम होता है आपने चंडको अब भी नहीं पहचाना।

हंसा—तब नहीं पहचाना था, पर अब पहचाना है। वह देवता है बहिन, पर मैं—इस भूतलपर रहनेवाली पथभ्रष्टा नारी उसके महत्व तक नहीं पहुँच सकी, उसके दिव्य रूपको नहीं पहचान सकी।

चपला—अब अधिक विलंब करनेका समय नहीं। महाराज तो सब कुछ जान ही गये हैं और अब कुमार जोधासिंहको भी इस बातका पता लग गया होगा, अतः हमें भी सतर्क रहना चाहिये।

हंसा—अब करूं भी तो क्या करूं ! कुछ समझमें नहीं आता।

भिखारिन--किसीको भेजकर कुमार चंडको बुलवाना चाहिये।

हंसा--मेरा विश्वासपात्र है ही कौन, जिसे भेजूं ?

भिखारिन--आप जिसे आज्ञा देंगी, वही जायगा।

हंसा--तो तुम लोग ही..........

चपला--(बात काटकर) हमही जानेको तैयार हैं।

हंसा--अब देर न करो।

(तीनों जानेको उद्यत होती हैं।)

चपला--(हंसासे) पीछे कहीं फिर इन लोगोंके जालमें न फंस जाना। विशेषत: चम्पासे सतर्क रहना।

हंसा--उस दुष्टाका नाम न लो। उसीकी बातोंपर विश्वास कर मैंने चंडको तुरन्त निर्वासन दिया था। नहीं तो, जोधासिंहकी बातको मैं अनुसन्धान किये विना, कभी सत्य न मानती।

(तीनों जाती हैं)

(परदा गिरता है।)

दूसरा दृश्य

(स्थान--मांडू। एक गृहका सुसज्जित कमरा। कुमार चंड और रामसिंह परस्पर बातें करते आते हैं।)

रामसिंह--यह साधारण समस्या नहीं है, इसको हल करनेका कोई न कोई उपाय करना ही होगा।

चंड--मै विवश हूँ। रघु भैयाकी मृत्युका जितना शोक मुझे हुआ है, उतना और किसी को क्या होगा ! क्या वह मेरा भाई न था, क्या उसकी नसोंमें भी मेरे ही पूर्वजोंका रक्त नहीं था ? पर क्या करूं, प्रणबद्ध हूँ, मेवाड़में पुनः स्वयं प्रवेश न

करनेकी प्रतिज्ञा कर चुका हूँ । फिर यह भी तो पूर्णरूपसे निश्चित नहीं कि उसका घातक है कौन !

रामसिंह—यही निर्णय करनेके लिये तो मैं आपको वहां जानेको कह रहा हूँ। यदि इस समय रघुसिंह की मृत्युका बदला न लिया तो आततायियोंका उत्साह और भी बढ़ जायगा, जिसका परिणाम मेवाड़का सर्वनाश होगा।

चंड—मैं क्या कर सकता हूँ, मेवाड़ का दुर्दैव !

रामसिंह—(मनमें) इन बातोंसे मैं सफल नहीं हो सका, अब किसी और उपायका अवलंबन करना चाहिये ! (प्रकट) क्या आपको यह भी पता है कि मेवाड़की दशा आजकल क्या हो रही है ?

चंड—सब कुछ सुन चुका हूँ।

रामसिंह—क्या ?

चंड—यह कि महाराज रणमल्ल मेवाड़को मारवाड़ बना रहा है।

रामसिंह—और क्या ?

चंड—और यह कि प्रधानमंत्रीसे लेकर सब उच्च पदस्थोंको पदच्युत कर वहां मारवाड़ियोंको नियत कर दिया है।

रामसिंह—कुछ और भी ?

चंड—हां, यह भी कि रणमल्ल और उसके पुत्र जोधासिंहके अत्याचारोंसे मेवाड़की प्रजा बहुत तंग है।

रामसिंह—आपको इन सब बातोंका पता कैसे लगा ?

चंड—अपने गुप्तचरोंके द्वारा। मेरी देह चाहे मेवाड़को छोड़ चुकी है पर मेरी आत्माका सम्बन्ध उससे पूर्ववत बना है। जिसकी मिट्टी से मेरे शरीरका प्रत्येक कण बना है, जिसके अन्नजलसे मेरे रुधिरकी प्रत्येक बूँद बनी है, जिसकी

धरती मेरे पूर्वजोंकी जन्मदात्री है, जिसकी रक्षामें सीसोदिया-कुलके वीरोंके रक्तकी नदियां बह चुकी हैं, वह मेवाड़ क्या मेरे हृदयसे दूर रह सकता है?

रामसिंह—जिस मेवाड़के लिए आपके हृदयमें इतना प्रेम है, उसे आततायियोंसे पददलित होते देखकर भी उसकी रक्षा न की जाय, यह बात समझमें नहीं आती।

चंड—महाराणी द्रौपदीको कौरवोंसे अपमानित होते देखकर भी धर्मराज युधिष्ठिर मुख नीचे किये क्यों बैठे रहे? क्यों भीमकी गदा उसके सामने पड़ी थी और उसे उठानेको उसका हाथ नहीं उठता था? क्यों सव्यसाची अर्जुनका गांडीव निकम्मा पड़ा था? बात यह थी कि वे भी मेरी तरह प्रणबद्ध थे।

(भवानीसिंह आता है और प्रणाम करता है)

आओ भवानीसिंह, कुछ नया समाचार लाये हो?

भवानीसिंह—कई नई बातोंका पता लगा है, तभी तो हाज़िर हुआ हूं।

(रामसिंह की ओर सन्दिग्ध दृष्टिसे देखता है।)

चंड—ये भी अपने ही हैं, जो कहना हो कह डालो, इनसे कुछ भी गोप्य नहीं है।

भवानीसिंह—एक तो यह बात है कि कुमार रघुसिंहकी मृत्यु महाराज रणमल्ल और जोधासिंहके षडयन्त्रसे हुई है।

चंड—क्या इसमें महाराणीका भी कुछ हाथ था?

भवानीसिंह—इसका मुझे पता नहीं। दूसरी बात यह है कि आपका निर्वासन भी इन्हीं लोगोंके षडयन्त्रका परिणाम था। जोधासिंह और महाराणी की दासी पद्माने महाराणीको आपके विरुद्ध इतना उत्तेजित किया था कि उन्हें आपको निर्वासन-दण्ड देनाही पड़ा।

रामसिंह—तुम्हारे कहनेका यह अभिप्राय है कि महाराणीका इसमें बहुत दोष नहीं था।

भवानीसिंह—मुझे तो ऐसाही प्रतीत होता है। एक और बातका पता लगा है जिसका भेद अभी तक नहीं खुला।

चंड—वह क्या ?

भवानीसिंह—भिखारिनके विषयमें शायद आपने भी सुना होगा। वह बेचारी इधर-उधर घूम-घाम कर दो रोटियां ले आती है और उन्हींसे पेट पालती है। हां, कभी कभी एक-आध गाना भी गा देती है। उसकी बाबत जोधासिंह पद्माको कह रहा था कि उस पर कड़ी नज़र रखना, उसे राजमाताके पास न जाने देना।

(चंड रामसिंहकी ओर देखता है, रामसिंह कुछ मुस्करा देता है।)

रामसिंह—तुमने कभी उसका गाना सुना है ?

भवानीसिंह—मैंने तो कभी नहीं सुना, पर जिन्होंने सुना है वे कहते हैं कि उसके गानोंमें जादूका असर है। जो सुनता है मेवाड़के लिये मतवाला हो जाता है।

चंड—यदि वह ऐसे गाने गाती है, तो रणमल्लका उसके विरुद्ध होना स्वाभाविक है। क्या उसे कोई अधिक कष्ट तो नहीं दिया जा रहा ?

भवानीसिंह—सुना था एक दिन वह गा रही थी तो कुछ रक्षापुरुषोंने उसे इतना पीटा कि वह बेहोश होकर भूमिपर गिर गई। तब एक मनुष्य आकर उसे उठा ले गया। कुमार, सुननेमें आया है कि उस बेचारीने सपत्नीके पुत्रद्वारा निर्वासित होकर यह वृत्ति धारण की है। (रामसिंहकी आँखोंमें आंसू आजाते हैं, वह अपना मुंह दूसरी ओर फेर लेता है।)

चंड—रामसिंह, तुम्हारी......(रुककर) भिखारिनके साथ ऐसा दुर्व्यवहार हुआ और तुमने बताया तक नहीं !

रामसिंह—कुमार, मेरी कहानीका श्रीगणेशही हुआ था कि ये लोग आ गये।

चंड—भवानीसिंह, तुमने यह तो बताया ही नहीं कि तुमने इतनी घटनाओंका हाल एकदम कहांसे जान लिया।

भवानीसिंह—कुछ जोधासिंह और पद्मासे और कुछ इधर-उधर घूम-घाम कर। एक दिन मैं और समरसिंह सड़क परसे गुज़र रहे थे कि जोधासिंह दिखाई दिया। हम छिप गये। हमारे छिप जानेसे उसे कुछ सन्देह हुआ। वह हमें ढूंढ़ ही रहा था कि उसका पद्मासे साक्षात् हुआ। हम पासही एक गृहके द्वारके पीछे छिपे थे। उन्हें इसका पता न था। अतः उन्होंने जो जो बातें उस समय निश्शंक होकर कीं, वे सब हमने सुन लीं।

रामसिंह—अब यह बात तो स्पष्ट होगई है न कि कुमार रघुसिंहके घातक यही लोग हैं ?

चंड—भवानीसिंहके कहनेसे तो यही प्रतीत होता है।

रामसिंह—और यह भी प्रमाणित हो गया है कि राजमाताने जो कुछ किया है वह अपनी इच्छासे नहीं किया किन्तु विशेष परिस्थितियोंसे बाधित होकर किया है ?

चंड—यह भी भवानीसिंहसे ही पता लगा है।

रामसिंह—तो अब मेवाड़ जानेमें कोई अड़चन न होनी चाहिए।

चंड—रामसिंह, तुमने मेरे इतने घनिष्ठ संगी होते भी, खेद है कि मुझे नहीं पहचाना। अब भी मेरे और मेवाड़के

बीचमें जो मेरे प्रणकी परिखा है उसे लांघने को कोई सेतु नहीं बना।

(एक भील द्वारपाल आता है।)

द्वारपाल—(झुककर) अन्नदाता, द्वार पर दो स्त्रियां खड़ी हैं। कहती हैं हम मेवाड़से आई हैं।

चंड—मेवाड़से आई हैं! तो उन्हें आने क्यों नहीं दिया?

द्वारपाल—आपही की तो आज्ञा है कि किसी अपरिचित व्यक्तिको अंदर न आने दूं।

चंड—अच्छा, उन्हें आने दो (द्वारपाल जाता है।) कहीं माताजी...

(भिखारिन और चपला आती हैं।)

चपला—(चंडकी बातको सुनकर और बीचमें ही काटकर) माताजी स्वयं भी आजातीं यदि इस समय मेवाड़ छोड़ना उनके लिए उपयुक्त होता।

(रामसिंह भिखारिनको प्रणाम करता है।)

चंड—(कुछ विस्मयसे) चपला, माताजी स्वयं आतीं?

चपला—हाँ, कुमार, स्वयं आतीं।

चंड—क्यों?

चपला—आपको लेजानेके लिए।

भिखारिन—जिस चंड-सूर्यके मेघावृत होनेसे मेवाड़ अंधकार-ग्रस्त हो गया है उसीकी दिव्य प्रभासे मेवाड़को पुनः प्रकाशित करनेके लिए।

चंड—(भिखारिनसे) आप भी साथ हैं? चपलाके चापल्यने मुझे आपको देखने तक को भी समय नहीं दिया। तुम्हारा स्वागत भी न कर सका। कहिये माताजी का क्या हाल है?

भिखारिन—अनुताप की आगमें जल रहीं हैं।

भवानीसिंह—(अपने मनमें) अब कुछ कुछ पता लग रहा है, तभी उन लोगों को भिखारिन पर सन्देह था !

चंड—उनके अनुताप का कारण ?

भिखारिन—यही कि महाराज रणमल्ल और जोधासिंहके षड्यन्त्रों का भांडा फूट गया है।

चंड—भांडा फूटा कैसे ?

भिखारिन—उन लोगोंकी ही अपनी उद्धतता और लोलुपतासे। कुमार रघुसिंहको अपने मार्गसे सदाके लिए हटा कर और आपको निर्वासन दिलाकर वे समझे बैठे हैं कि अब उनके सामने खड़ा होने वाला मेवाड़में कोई नहीं रहा। इसलिए खुलमखुल्ला अत्याचार कर रहे हैं। सब मेवाड़ियोंसे उच्चपद.........

चंड—(उसे रोककर) इन सब बातोंका मुझे पता है। मुझे यह बताओ कि माताजी का मन उनसे कैसे फिर गया है ?

चपला—एक दिन दरबारमें महाराज कुमार मुकुलको लिये सिंहासन पर बैठे थे। कई दरबारी भी थे। किसी कारणवश कुमार सिंहासनसे उतर कर नीचे चला गया। महाराज एकाकी ही सिंहासन पर राजछत्रसे नीचे बैठे रहे। जब कुछ दरबारियोंने इसका प्रतिवाद किया तो उल्टे उन्हें बहुत बुरा-भला कहा। मैं उस समय दरबारके साथवाले कमरेमें थी। मुझे शोर सुनाई दिया। जब खिड़कीसे झांका तो वह दृश्य देखकर अवाक् रह गई। तुरन्त जाकर महाराणीजीसे निवेदन किया। वे कुछ पहले ही सन्दिग्ध थीं, मुझे लेकर दरबारमें पहुँचीं।

चंड—स्वयं दरबारमें गईं ?

चपला—हाँ, कुछ परिस्थिति ही ऐसी हो गई थी।

चंड—(उत्सुकतासे) फिर ?

चपला—महाराणीजी कुछ आवेशमें थीं, उन्होंने अपने पिताको दो-चार खरी-खरी बातें सुनाईं। इस पर महाराजको भी क्रोध आगया और कहने लगे—राज्य मेरा है, इसको चंडसे मैंने छीना है। अब मुझसे इसे छीनने वाला कौन है ? यदि कुछ हल्ला किया तो मुकुलका भी वही हाल होगा जो रघुका हुआ है। यह सुनते ही महाराणी निस्तब्ध हो गईं। उन्हें वास्तविक परिस्थितिका पता लगा और हमें आपके पास भेजा है।

भिखारिन—जितना पश्चात्ताप उन्हें हो रहा है उसका वर्णन नहीं हो सकता। उन्होंने यह कहला भेजा है कि "तुम्हारी अपराधिनी मैं हूं, न मुकुल है और न मेवाड़ है। इस समय दोनों संकटमें हैं। तुम्हींने तो मेवाड़ छोड़ते समय कहा था कि 'इस दास की मेवाड़ को फिर जब कभी आवश्यकता पड़े तो इसके प्राण उसकी रक्षावेदीपर बलि होनेको तैयार होंगे।' वह समय अब आगया है। यदि मेवाड़ छोड़नेका प्रण तुम्हारा है तो उसकी रक्षा करनेका भी तो तुम्हारा ही प्रण है।"

चंड—यह बात है ! तो (कुछ देर ठहर कर) मुझे वहां जाना ही होगा। जिन्होंने निकाला था यदि वे ही मुझे बुला रहीं हैं तो मुझे उनकी पहली आज्ञा की तरह इस आज्ञा का भी पालन करना होगा।

सब - प्रणवीर चंडकी जय !

चंड—(भिखारिनसे, मुस्कराकर) रामसिंहको देखकर तुम भागी नहीं, यहीं खड़ी हो ?

भिखारिन—तुम दोनोंके स्नेहपाशने जो मुझे बांध रक्खा है।

चंड—माता-पुत्रका पुनर्मिलन हो गया और मुझे इस बातका पता तक नहीं दिया !

रामसिंह—यह भी तो आपके गुप्तदूतोंने आपको बता दिया होगा। (चंड मुस्कराता है)।

चंड—अब भावी कार्यक्रम क्या होना चाहिए ?

भिखारिन—इसका निर्णय भी अभी होजाना अच्छा है। यदि वह दुरात्मा कुछ और कर बैठा तो अनर्थ हो जायगा।

चंड—भील जातिके जो दोसौ सैनिक मेरे साथ आये थे उनमें से लगभग डेढ़ सौ को तो मैंने मेवाड़में ही भेज दिया था। वे वहीं पर अन्यान्य स्थानों पर काम कर रहे हैं। हमारे संकेत-मात्रसे एकत्र हो जायेंगे। (कुछ सोचने लगता है।) दीपा-वलीका त्योहार समीप ही है। उस दिन कुमार मुकुल किसी बहानेसे देहातमें आनेका आयोजन करे। हम लोग अल्लाउद्दीन खिलजी की यादगारके पास खड़े रहेंगे। जब कुमार लौटेगा तो हम भी उसके साथ हो लेंगे और उसके अंगरक्षक बनकर शहर के अन्दर घुस जायेंगे। शहरके अन्दर घुसने की देर है, फिर हमें अपनी तलवारों पर पूरा भरोसा है।

चपला—शहरमें आपको और लोगोंसे भी सहायता मिल जायगी। रणमल्लके व्यवहारसे सब तंग हैं।

रामसिंह—माता, तुम और चपला जाकर राणीजीको ये सब बातें समझा दो।

चंज—भवानीसिंह, जो जो भी भील मेवाड़में जहां जहां पर है, उसे यह खबर पहुँचाना तुम्हारा काम है । इस बातका ध्यान रखना कि यह रहस्य किसी पर प्रकट न हो । अब तुम तीनों जाओ ।

(चपला और भवानीसिंह चंड को प्रणाम करते हैं और चंड और रामसिंह भिखारिन को प्रणाम करते हैं । तीनों जाते हैं ।)

चंड—रामसिंह, अब नीतिनिपुणता इसीमें है कि यह काम सफलता से होजाय ।

रामसिंह—आप चिन्ता न करें, आपकी कृपासे सब ठीक होजायगा ।

(बातें करते-करते जाते हैं)

(परदा उठता है ।)

तीसरा दृश्य

(स्थान—मेवाड़, राजमहलका एक सुसज्जित कमरा । महाराज रणमल्ल अफीमके नशेसे मस्त होकर खाट पर पड़ा हुआ खर्राटे ले रहा है । पास ही कुछ दूर एक कोने में खड़ी हुई चपला उसकी ओर ध्यानसे देख रही है । चपला के चेहरेका रंग उड़ा हुआ है । मालूम होता है किसो गहरी चिन्ता में निमग्न है । कभी वह द्वार की ओर झाँकती है और कभी फिर अपने स्थान पर आजाती है ।)

चपला—(अपने आप) अभी तक नहीं आये । कहीं कोई विघ्न तो नहीं हो गया ? नहीं तो वे देर करनेवाले नही हैं । चलूं राजमातासे पता लगाऊं , शायद उन्हें कुछ पता हो ।

(हंसा आती है । चपला उन्हें प्रणाम करती है ।)

(धीरेसे) मैं आपहीके पास जारही थी । अभी तक वे लोग नहीं आये ।

हंसा—(धीरेसे) मैं भी इसी चिन्तामें हूं । कभी यह अवसर चूक गया तो फिर और कोई हाथ न आयगा । इस समय सब प्रबन्ध ठीक है । सूखे हुए वनमें एक चिनगारी फेंकने की देर है ।

चपला—यदि यह काम आज ही रात्रिको न हो गया तो फिर इस मामलेको गुप्त रखना बहुत कठिन होगा ।

हंसा—इसीकी तो मुझे भी चिन्ता है ।

चपला—कुमार मुकुल आगए हैं ?

हंसा—उसे आये तो पहरके लगभग होगया है । वह और उसके साथी निर्दिष्ट स्थान पर कुछ समय तक प्रतीक्षा करते रहे, जब चंड का कुछ भी पता न लगा तो लौट आये । चपला, मुझे सन्देह है कि कहीं चंडका विचार बदल न गया हो । आखिर मुकुल उसका वैमात्रेय भाई ही है, उसके लिए वह प्राणों को खतरे में क्यों डालेगा !

चपला—महाराणीजी, छोड़ो इस विचारको । चंड उनमेंसे नहीं जो अपनी बात से पलट जाते हैं । मार्ग में कोई वाधा होगई होगी, अभी आते ही होंगे ।

हंसा—(रणमल्लकी ओर इशारा कर) इनका क्या हाल है ?

चपला—आज कुछ अफीमकी मात्रा अधिक खा गये हैं । इनकी आप चिन्ता न करें । आपके आदेश के अनुसार मैं इनके पास ही रहूंगी ।

(महलके बाहर कोलाहल सुनाई देता है ।)

हंसा—(कोलाहल सुनकर) मालूम होता है कि वे आगये हैं। (भागकर बाहर जाती है, फिर लौटकर, आवेशमें) चपला, वे आ गये हैं! मालूम होता है चिर निद्रामें सोया हुआ समस्त मेवाड़ही एकदम जाग उठा है। देखो बाहर जाकर, हज़ारों लोग मसालें लिये हुए महलकी ओर आरहे हैं। ऐसे चलते-फिरते दियों की दीवाली पहले कभी न हुई थी।

(सहसा भिखारिन आती है।)

भिखारिन—(ज़ोरसे) महाराणीजी, वे आगये हैं! कुमार चंड आगये हैं! उनके आतेही हज़ारों मेवाड़ी घरबार छोड़ कर उनके साथ हो गये हैं।

हंसा—बहिन, तुमने आखिर सोते सिंहको जगाकर ही छोड़ा।

(उनकी आवाज़ से रणमल्लकी नींद खुल जाती है।)

रणमल्ल—(अफीमके नशेमें अर्धनिद्रकी अवस्थामें) क्या... क्या... हल्ला मचाया तुम...ने। चली जा...ओ यहांसे। (उठने लगता है।)

हंसा—चपला, हम जाती हैं। इनका तुम ध्यान रखना। कहीं जाने न पावें।

चपका—इसकी चिन्ता न करें।

(हंसा और भिखारिन जाती हैं। रणमल्ल अफीमके नशेमें फिर सो जाता है।)

चपला—(इधर उधर देखकर) कोई रस्सी भी यहां नहीं है। (उसे रणमल्लकीही पगड़ी दिखाई देती है। कुछ हर्षसे) जिस कार्यकी सिद्धि ईश्वरको अभीष्ट होती है, उसके साधन वह स्वयं भेज देता है!

(पगड़ी लेकर उससे उसे चारपाईके साथ ही कसकर बांध देती है।) अब सोये रहो, अन्तकाल तक सोये रहो। इस नींदसे तुम कभी न जागोगे।

(हाथमें खड्ग लिए चंडका प्रवेश)

चंड—(रणमल्लको देखकर) सपोला कायर तो भाग गया है, पर साँप हाथ से छूट कर कहां जायेगा! पापियोंको नींद भी अधिक आती है। पापों के बोझ से दबी हुई इनकी आत्मा सदा सोई रहती है।

(उसे बंधा हुआ देखकर) अरे! इसे बांधा किसने है?

(पास खड़ी चपलाको देखकर) क्या तूने इसे बांधा है चपला? क्या तुझे चंडकी तलवारपर भरोसा न था? चंड निहत्थे शत्रुपर वार न करेगा। (उनकी आवाजसे रणमल्लकी आँख खुल जाती है, वह उठना चाहता है, पर उठ नहीं सकता।)

रणमल्ल—(चंडको देखकर) क्या तुम हो! तलवार लिये हो! अब समझा। चंड, राजपूती वीरताके किस पाठमें पढ़ा है कि सोते हुए शत्रुको बाँधकर उसपर वार किया जाय?

चंड—मैंने नहीं बांधा पापी, तुम्हारे पापोंकी डोरीने ही तुम्हारी देहको जकड़ रक्खा है। पर चंडकी तलवार निरवलम्ब शत्रुपर वार न करेगी। मैं तुम्हें अभी खोल देता हूं। जोधा कायर तो भाग गया, नहीं तो बूढ़े रुधिरसे कलुषित करनेसे पूर्व अपने करवालको उसकी जवानीके उष्ण लोहू से तृप्त करता।

रणमल्ल—(चारपाईके साथही उठकर खड़ा होजाता है।) क्या जोधा तेरी तलवारसे निकलकर भाग गया! बहुत अच्छा हुआ, मुझे उसकी चिन्ता थी। अब मैं अपने पीछे अपने वंश-

घरको छोड़कर मरूंगा, मारवाड़का सिंहासन खाली न रहेगा। चंड, तू वीर है, कमसे कम अपने आपको वीर कहता है। क्या यह तुझे शोभा देता है? एक बार मुझे वन्धनमुक्त कर मेरे हाथमें तलवार दे, फिर बूढ़े रणमल्ल और जवान चंडके युद्धका कौतुक देखना, भीष्म और अर्जुनके युद्धका मज़ा आयगा।

चंड—मैं स्वयं तुमपर ऐसी अवस्थामें प्रहार करना नहीं चाहता। (आगे बढ़कर तलवारसे उसके बन्धन काटना चाहता है। रणमल्ल समझता है कि चंड उसपर प्रहार करने लगा है। वह ज़ोर से भुजाओंका झटका देता है, सब बन्धन टूट जाते हैं।)

रणमल्ल—(विकट हंसीसे) देखी है बूढ़ी भुजाओंकी हिम्मत! पर करूं क्या हाथमें तलवार नहीं है। (पास पड़े हुए लोटेको उठा कर चंडपर प्रहार करता है, चंडको उससे गहरी चोट आती है।)

चंड—(तलवार लेकर उस पर झपटता हुआ) तुम्हारी जीवनलीला अभी समाप्त होती है। (तलवारको उसके हृदयमें घुसेड़ देता है। चपला चीख मारकर भूमिपर गिर पड़ती है।)

चलो, अन्त हो गया इसका और साथही इसके पापोंका। अब चल कर देखना चाहिये कि वाहर की क्या दशा है। (चपलाको देखकर) वेचारी रण-चंडीका नग्न तांडव देख कर डर गई है। (उसे उठाकर चारपाई पर लिटा देता है। रामसिंह और उसके साथ दो राजपूत सरदार आते हैं। तीनोंके हाथमें लोहूसे लिप्त नंगी तलवारें हैं। तीनों आते ही चंडको प्रणाम करते हैं।)

चं—रड ामसिंह, नगरकी क्या खबर है?

रामसिंह—चिंता की कोई बात नहीं कुमार। सब कुछ ठीक हो गया है।

चंड—व्यर्थ रक्तपात तो नहीं हुआ ?

रामसिंह—बिल्कुल नहीं. आपका नाम सुनते ही सबके सब विपक्षी शहर छोड़कर जोधासिंह के साथ भाग गये हैं। जिन दो चारोंने कुछ उत्पात मचाना चाहा वे ही केवल हमारी तलवारोंके शिकार हुए हैं।

चंड—रामेश्वरसिंह और हरिसिंहसे तुम्हारा मेल कहां हुआ ?

रामसिंह—इन दोनों को क्रूर रणमल्लने आजीवन कारावास दिया था। जिस समय आप महल की ओर गये थे मैं उसी समय कारागारकी ओर लपका और इन दोनोंको निर्मुक्त कर अपने साथ ले आया। इनके साथ होनेसे हमारा सामना करनेको किसी का साहस नहीं हुआ।

चंड—(उन दोनोंको) अपको भी हमारे लिए कष्ट उठाना पड़ा।

हरिसिंह—हमने तो अपना कर्तव्यमात्र पूरा किया है। जिन स्वर्गीय महाराणाका उम्रभर नमक खाते रहे उन्हींके वंशजोंकी झूठी निन्दा कैसे सुन सकते थे !

चंड—आपके इस उपकार को महाराणा मुकुलसिंह कभी न भूलेंगे (चपलाकी ओर इशारा कर) रामसिंह, चपला यहाँ बेहोश पड़ी है, इसे राजमाताके पास पहुंचाना होगा।

रामसिंह—यह बेहोश कैसे हो गई ?

चंड—रणमल्लके रक्तपातका दृश्य देख न सकी।

रामसिंह—महाराज रणमल्ल को भी तो उठवाना होगा।

चंड—इसका अन्त्येष्टि माताजी की इच्छानुसार होगा। जैसा भी था, था तो उनका पिता ही।

रामसिंह—यही उचित होगा। (चपला को कंधे पर उठा लेता है। आगे आगे रामसिंह और उसके पीछे सब चले जाते हैं।)

(परदा गिरता है।)

चौथा दृश्य

(स्थान—मेवाड़का राजमहल। एक कमरा। राणा मुकुलसिंह और चंड बातें करते आते हैं।)

मुकुलसिंह—भैया यह न होगा, मैं इस प्रस्तावको कभी न मानूंगा।

चंड—तुम अब बच्चे नहीं रहे, बड़े हो गये हो, हिताहितमें विवेक कर सकते हो। तुम ही सोचो अब मेरा यहां रहना ठीक है?

मुकुलसिंह—क्यों नहीं ?

चंड—क्यों नहीं ! क्या बार-बार समझाना होगा। अब तुम वयस्क होगये हो, मेवाड़के सिंहासनके स्वामी हो, यहांके राणा हो। मेवाड़के राणाको राजकाजमें स्वतन्त्रता होनी चाहिये। परन्तु मेरे यहां रहते तुम स्वतन्त्र नहीं रह सकते।

(बातें करते-करते बैठ जाते हैं।)

मुकुलसिंह—कारण ?

चंड—एक कारण तो यह कि मेरे यहां रहते तुम्हारी सत्ता प्रजाजनोंपर नहीं जम सकेगी और दूसरे यह कि बात-बातके लिए मुझपर निर्भर रहनेसे तुम स्वावलंबी कभी न हो सकोगे।

मुकुलसिंह—आपकी सहायताके बिना मैं इतने विशाल राज्यका संचालन कैसे कर सकूंगा ?

चंड—जो तैरना सीखना चाहता है वह तैराक तब तक नहीं बन सकता जब तक उसे नदीके प्रवाहमें अपनी ही शक्तिपर

नहीं छोड़ा जाता । आरम्भमें वह एक-दो गोते चाहे खाले परन्तु पीछे हाथ-पैर मार कर प्रवीण तैराक बन जाता है ?

मुकुलसिंह—पर उसके डूबनेकी भी तो संभावना है ।

चंड--हो सकती है, पर उसका उपाय पहलेही कर दिया जाता है ।

मुकुलसिंह--इसके लिए क्या उपाय किया गया है ?

चंड—पिताजीके समयके जिन पुराने अनुभवी मन्त्री और सरदारों को रणमल्लने निकाल दिया था, उन्हें फिर अपने अपने पदों पर लगा देनेसे शासनका कार्य यथापूर्व चल रहा है ।

(राजमाता हंसाका प्रवेश, दोनों कुमार उठ कर उन्हें प्रणाम करते हैं ।)

हंसा—बेटा चंड, जो कुछ मैंने रामसिंहसे सुना है क्या वह सच है?

चंड—कौनसी बात माता ?

हंसा—यही कि तुम फिर मेवाड़को छोड़ रहे हो ।

चंड--यह तो ठीक है ।

हंसा—हम लोगोंसे फिर कोई अवज्ञा हुई है क्या ?

चंड- अवज्ञा की कोई बात नहीं माताजी । यही बात मैं मुकुलको समझा रहा था । मुकुलके भविष्यकी उज्ज्वलता इसी पर निर्भर है कि मैं उसके मार्गसे दूर रहूँ ।

हंसा--बेटा, तुम दोनों मेवाड़की दो भुजाएं हो, दोनों उसके साथ रहेंगी तभी उसमें शक्ति होगी ।

चंड—मैं चाहता हूँ कि उसकी एक ही भुजामें इतनी सामर्थ्य हो कि उसे दूसरीकी अपेक्षा ही न रहे । पिताजीने गया-यात्रा करते समय मुझे मुकुलका अभिभावक नियत किया था । उसके वयस्क होजाने पर राज्यका भार उसके कन्धों-पर छोड़ कर स्वयं अलग हो जाना मेरा कर्तव्य था । मुझे

यह देखकर अत्यन्त हर्ष होरहा है कि उसके कन्धे उस भारको उठानेमें सशक्त होगये हैं। अब मैं समझता हूँ कि पिताजी की सदिच्छा और मेरे जीवन का लक्ष्य दोनों पूर्ण होगये हैं। मुझे अब आयुका शेष भाग एकान्तमें व्यतीत करना चाहिए।

हंसा--मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी।

(भिखारिन और रामसिंहका प्रवेश, दोनों बातें करते आते हैं।)

भिखारिन—(रामसिंहसे) मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी।

चंड –यह झगड़ा किस बात पर हो रहा है ?

रामसिंह--माताजी मेरे साथ जानेको हठ कर रही हैं।

चंड--और माताजी मेरे साथ जानेको हठ कर रही हैं।

भिखारिन—जिस पौधेको अपने हाथसे लगाकर इतना बड़ा किया है क्या उसकी शीतल छायाके सेवनका भी मुझे अधिकार नहीं है, फलों का आस्वादन तो दूर रहा ?

चंड—जो माता अपने हृदयका रक्त देकर पुत्रको पालती है, उसके सुखके निमित्त अपने जीवनके सुखोंको तिलांजलि दे देती है, उसके कष्टको निवारण करनेके लिये असीम कष्टोंको अपने ऊपर लेती है—क्या उस विश्वकी अमूल्य विभूति, जननीके उपकारोंका बदला कोई दे सकता है ? पर......

हंसा--फिर पर क्या ? हम दोनों तुम दोनोंकी विमातायें हैं इसलिए हमें जननीके अधिकार से वञ्चित कर रहे हो ?

(आँखें आंसुओंसे डबडबा जाती हैं।)

चंड—यह बात नहीं माताजी, मैं आपको अपनी ही मां समझता रहा हूँ, मेरे हृदयमें कोई भेद नहीं रहा। फिरभी मेरे स्नेहसे प्रभावित होकर अपने कर्तव्यको न भूलिये। मुकुल वयस्क तो होगया है, पर उसे अभी माताके स्नेह और शासन दोनोंकी आवश्यकता है। जिस पौधेको पिताजीने लगाया,

हम सबने मिलकर सींचा और इतना बड़ा किया, क्या पुष्पित और फलित होनेसे पूर्वही उसका निरीक्षण छोड़ देना उचित होगा ?

भिखारिन—महाराणीजी का तो मुकुलके पास रहना उचित है, पर मेरा तो रामसिंह ही सर्वस्व है, उसके बिना संसारमें मेरा है ही कौन ?

रामसिंह—पुत्र-वात्सल्यके मोहसे आप ऐसा कह रही हैं। किन्तु हमें अपना-अपना कर्तव्यपालन करनेके लिए इन मोहबन्धनों को तोड़ना होगा।

भिखारिन—मोहबन्धन तोड़ना होगा ! क्यों ?

रामसिंह—क्योंकि हम दोनोंके मार्ग भिन्न-भिन्न हैं। मेरा और... इनका (चंडकी ओर निर्देश कर) मार्ग मेरा मार्ग है। और...

भिखारिन—(बीचमें ही बातको काटकर) इनका (हंसाकी ओर इशारा कर) मार्ग मेरा मार्ग है—यही न कहने लगे थे ? मैं तुम्हारे इस निर्णयको स्वीकार करती हूँ। (हंसासे) महाराणीजी, आप भी कुमारको मोहपाशसे उन्मुक्त करदें।

हंसा—बहिन, मोहपाश ऐसा कच्चा पाश नहीं कि एकही झटकेसे टूट जायगा, इसकी दृढ़ ग्रन्थियोंको तोड़नेके लिए वर्षों की साधना की आवश्यकता होगी। तो भी हृदय पर पत्थर रख कर.........

चंड—माता ! (आँखोंमें आंसू भर जाते हैं।)

हंसा—बेटा ! (उसकी आँखोंसे आंसू कपोलों पर ढुलक आते हैं।)

(रामसिंह और भिखारिन भी एक दूसरे की ओर साश्रु आँखोंसे देखती हैं। आगे आगे चंड और रामसिंह और उनके पीछे हंसा और भिखारिन और सबके पीछे मुकुल धीरे धीरे जाते हैं।)

पटाक्षेप